

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

गुर गिआन अंजन सचु नेत्री पाइआ ॥
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ ॥

मासिक

गुरमति ज्ञान

मार्गशीर्ष-पौष, संवत् नानकशाही ५४४
वर्ष ६ अंक ४ दिसंबर 2012

संपादक : सिमरजीत सिंघ एम. ए, एम. एस. सी.
सहायक संपादक : जगजीत सिंघ

चंदा

सालाना (देश)	१० रुपये
आजीवन (देश)	१०० रुपये
सालाना (विदेश)	२५० रुपये
प्रति कापी	३ रुपये

चंदा भेजने का पता

सचिव, धर्म प्रचार कमेटी
(शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी)
श्री अमृतसर-१४३००६

फोन: 0183-2553956-60, फैक्स: 0183-2553919



एक्सटेंशन नंबर
वितरण विभाग 303 संपादकीय विभाग 304
e-mail : gyan_gurmat@yahoo.com
website : www.sgpc.net

विषय-सूची

गुरबाणी विचार २
संपादकीय ३
सरहिंद शहर एवं साका सरहिंद : ऐतिहासिक जानकारी ५
-सिमरजीत सिंघ
जागो फिर एक बार! १३
-प्रो सुरिंदर कौर
वे फर्ज़ के पाबंद थे (कविता) १९
-डॉ सुरिंदरपाल सिंघ
हमारे बच्चे धर्म और धार्मिक शिक्षा से दूर क्यों जा रहे हैं? २०
-डॉ जगजीत कौर
जो अपना धर्म और इतिहास भुला देते हैं (कविता) २५
-डॉ कशमीर सिंघ 'नूर'
महान दादी के महान पोते (कविता) २६
-इंजी करमजीत सिंघ 'नूर'
माता-पिता के संस्कार और बच्चे (कविता) २७
-श्री सुरजीत 'दुखी'
घर-परिवार में बेटा-बेटी में अभी भी हो रहा है भेदभाव २८
-स. सुरिंदर सिंघ निमाणा
बाल्यावस्था में धार्मिक शिक्षा का अभाव न होने दें ३१
-डॉ मधु बाला
बच्चे एवं उनकी संगत ३६
-डॉ राजेंद्र सिंघ 'साहिल'
गुरुपर्वों एवं ऐतिहासिक दिवसों का महत्त्व . . . ३८
-डॉ सत्येंद्रपाल सिंघ
बाल साहित्य का बच्चों के जीवन में स्थान ४२
-डॉ मनजीत कौर
बच्चों के प्रति अभिभावकों के कर्त्तव्य ४७
-डॉ आशा अनेजा
संयुक्त परिवार-प्रणाली और बच्चे ५०
-डॉ परमजीत कौर
युवकों की अगुआई में पिता की भूमिका ५२
-डॉ साहिब सिंघ अरशी
भारतीय शिक्षण संस्थाओं में बच्चों के संतुलित विकास . . . ५५
-डॉ रामनिवास शर्मा
मिटा दो स्वयं को! (कविता) ५७
-बीबी जसप्रीत कौर जस्सी
विद्यार्थी और अध्यापक का रिश्ता ५८
-डॉ दादूराम शर्मा
संस्कारों का कोई सॉफ्टवेयर नहीं ६२
-प्रो (डॉ) सुधा जितेन्द्र
कला और संस्कृति से बच्चे दूर क्यों? ६५
-प्रो योगेशवर कौर
बच्चों के बौद्धिक एवं शारीरिक विकास सम्बंधी . . ६७
-डॉ हरशिंदर कौर एम. डी
बच्चों और दादा-दादी में न कम हो घनिष्ठता ७३
-डॉ नवरत्न कपूर
बच्चों के माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य ७५
-स. बिक्रमजीत सिंघ
बच्चों के स्वास्थ्य सम्बंधी ज़रूरी बातें ७८
-स. गुरदीप सिंघ
माता-पिता के साये से दूर संस्थाओं में बढ़-फूल रहा बचपन ८०
-स. सतनाम सिंघ कोमल
बढ़ाएं बच्चों का आत्मविश्वास ८४
-सुश्री रंजना माथुर
छिन रही है बचपन की मासूमियत ८६
-श्री प्रशांत अग्रवाल
कम्प्यूटर, वीडियो गेम व मोबाइल फोन के दुरुपयोग . . . ८८
- डॉ अंजुमन
सेलफोन का प्रयोग और इनके रेडिएशन का खतरा ८९
-स. सुरजीत सिंघ
'वार माझ की' का साहित्यिक मूल्यांकन ९३
-डॉ निर्मल कौशिक
शिरोमणि गु. प्र. कमेटी के अध्यक्ष साहिबान-३ ९९
-स. रूप सिंघ
ख़बरनामा १०३

गुरबाणी विचार

गुर सेवा ते भगति कमाई ॥ तब इह मानस देही पाई ॥
इस देही कउ सिमरहि देव ॥ सो देही भजु हरि की सेव ॥१॥
भजहु गुोबिंद भूलि मत जाहु ॥ मानस जनम का एही लाहु ॥१॥रहाउ॥
जब लगु जरा रोगु नही आइआ ॥ जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥
जब लगु बिकल भई नही बानी ॥ भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥२॥
अब न भजसि भजसि कब भाई ॥ आवै अंतु न भजिआ जाई ॥
जो किछु करहि सोई अब सारु ॥ फिरि पछुताहु न पावहु पारु ॥३॥
सो सेवकु जो लाइआ सेव ॥ तिन ही पाए निरंजन देव ॥
गुर मिलि ता के खुल्हे कपाट ॥ बहुरि न आवै जोनी बाट ॥४॥
इही तेरा अउसरु इह तेरी बार ॥ घट भीतरि तू देखु बिचारि ॥
कहत कबीरु जीति कै हारि ॥ बहु बिधि कहिओ पुकारि पुकारि ॥५॥ *(पन्ना ११५९)*

भैरउ राग में उच्चारण किए गए उपरोक्त शबद में भक्त कबीर जी मनुष्य को संबोधित करते हुए फरमान करते हैं कि हे भाई! तुझे यह जो मानस देह मिली है, इसमें तू गुरु की सेवा के द्वारा भक्ति (बंदगी) की कमाई कर। इस देह को पाने के लिए देवता भी तरसते हैं। तुझे यह दुर्लभ मानस देह मिली है, तू हरि का सिमरन किया कर। हे भाई! प्रभु का सिमरन करना, भूल मत जाना। यही मानस देह पाने का लाभ है। इससे पहले कि तुझ पर बुढ़ापा रूपी रोग आ जाए; तेरे शरीर को काल जकड़ ले; तेरी जुबान लड़खड़ाने लगे, तू परमात्मा का सिमरन कर ले।

हे भाई! यदि तू इस समय (युवावस्था में) प्रभु-सिमरन नहीं करता तो फिर कब करेगा? जब काल (मृत्यु) तेरे सिर पर आ गया तो उस समय प्रभु-सिमरन नहीं हो सकेगा। जितना भी प्रभु-सिमरन तू करना चाहता है, अभी कर ले। यदि (उचित) समय निकल गया तो फिर पछताना ही शेष रह जाएगा।

भक्त कबीर जी आगे फरमान करते हैं कि प्रभु खुद जिस मनुष्य को सिमरन करने में लगाए वही यह सेवा कर सकता है और उसी को प्रभु प्राप्त होता है। सतिगुरु के सम्पर्क में आने से उसके (मन के) कपाट खुल जाते हैं और वो जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आता। भक्त कबीर जी शबद की अंतिम पंक्तियों में फिर ज़ोर देकर कह रहे हैं कि हे भाई! यही तेरे पास अवसर है, यही तेरी बारी है। इससे उचित लाभ लेने हेतु तू अपने अंदर सोच-विचार कर। यह मनुष्य जीवन अमूल्य सौगात है। इसे जीतकर जाना है या हारकर, यह तेरे हाथ में है। भक्त कबीर जी कह रहे हैं कि मैं तो तुझे प्रभु-सिमरन करने के लिए कई प्रकार से पुकार-पुकार कर कह रहा हूं।





बच्चों के प्रति हमारी जिम्मेदारियां

मानव का जन्म सभी जीवों से सर्वश्रेष्ठ है। सभी जीव अपने बच्चों की परवरिश बड़ी मेहनत एवं लगन से करके उनको जीवन-यापन के ढंग सिखलाते हैं। मनुष्य को अपने बच्चों की पालना करने के लिए सबसे ज्यादा मेहनत एवं समय लगता है क्योंकि मनुष्य ही सारी दुनिया को अच्छा या बुरा बनाने में अहम रोल अदा कर सकता है। बच्चों को दी गयी अच्छी शिक्षा दुनिया में स्वर्ग फैला सकती है और बुरी शिक्षा नरक से भी बद्तर जीवन सृजित कर सकती है। बच्चों को शिक्षित करना एवं उनमें अच्छे गुण भरना माता-पिता का अहम फर्ज़ है। शेख फरीद जी को बचपन में ही शिक्षित करने के लिए उनकी माता जी द्वारा किया गया प्रयास आज भी हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बंध में हमने एक सिक्ख बच्चे में अच्छे गुण भरने के लिए संसार के प्राणियों को अपने फर्ज़ों के प्रति जागरूक करने का एक छोटा-सा प्रयास करते हुए विशेषांक प्रकाशित किया है।

सिक्ख धर्म नवीन धर्म है तथा सरबत्त का भला चाहने वाला है। सिक्ख बच्चे को गुरमति का ज्ञान देने के लिए शिक्षा की कुछ ज्यादा आवश्यकता होती है, इसलिए माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई-बहन, अध्यापक, ग्रंथी साहिबान, प्रचारक साहिबान आदि सभी अहम रोल अदा करते हैं। सिक्ख इतिहास पर दृष्टि डालते हुए यह बड़ी सरलता से ज्ञात हो जाता है कि जब्र -जुल्म के विरुद्ध सिक्खों द्वारा किए गए संघर्ष में सिक्ख बच्चों की भी अहम भूमिका रही है। दशम पातशाह श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने बाल्य अवस्था में ही अपने पिता श्री गुरु तेग बहादर साहिब को सत्य की रक्षा हेतु शहादत देने के लिए भेजा जो कि अच्छी शिक्षा व संस्कारों की अति उत्तम मिसाल है। सिक्ख शहीदों में दशम पातशाह श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के साहिबज़ादों ने अपनी शहादत देकर अहम मिसाल अदा की है। चमकौर साहिब की जंग में दोनों बड़े साहिबज़ादे अपने गुरु-पिता श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी से आशीर्वाद लेकर जंग के मैदान में जिस प्रकार जूझे एवं शहादत प्राप्त की, वो सदैव सिक्ख बच्चों के लिए प्रकाश-स्तंभ रहेगी। इन सबके पीछे उनको दी गई शिक्षा का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। मासूम छोटे साहिबज़ादे बाबा ज़ोरावर सिंघ एवं बाबा फ़तहि सिंघ ने जाबिर मुगल सरकार की अति कठोर यातनाएं झेलते हुए जिस प्रकार शहादत प्राप्त की उसकी कोई अन्य उदाहरण संसार में कहीं से भी नहीं मिलती। इस शहादत के लिए दृढ़ इरादा रखने की प्रेरणा उनको अपनी दादी मां माता गुजरी जी से अंतिम समय तक मिलती रही थी। ये शहादतें हमारे बच्चों के लिए हमेशा प्रेरणास्रोत बनी रहेंगी। बाबा बंदा सिंघ बहादर के समय जब ज़ालिम सरकार के जुल्म का विरोध करते हुए गुरदास नंगल के किले में से बहुत

सारे सिंघों को गिरफ्तार करके दिल्ली में ले जाया गया तो उनको प्रतिदिन १००-१०० की संख्या में शहीद किया जाता रहा। एक दिन जब गिरफ्तार सिंघों में से एक बच्चे को कत्ल करने की बारी आयी तो उसकी मां बादशाह से यह कहकर रिहायी का हुक्म ले आयी कि उसका बच्चा सिक्ख नहीं है, सिपाहियों ने उसे गलती से पकड़ लिया है। जब बच्चे को इस बात का पता चला तो उसने शोर मचा दिया कि मेरी मां झूठ बोलती है, मैं सच्चा सिक्ख हूं! इस तरह जल्लादों ने उसको पकड़कर शहीद कर दिया। सच-धर्म की लड़ाई पर पहरा देने के पीछे उस बच्चे पर अपने अध्यापकों व गुरु-घर द्वारा मिली शिक्षा का प्रभाव था। बाबा बंदा सिंघ बहादर के सुपुत्र बाबा अजै सिंघ की शहादत तथा मीर मन्नू की जेल में कैद सिक्ख बीबियों के दूध पीते बच्चों को नेजों में पिरो-पिरोकर शहीद करने वाली घटनायें सिक्ख बच्चों द्वारा सत्य के संघर्ष के लिए डाले योगदान की ज़िंदा मिसाल हैं। सिक्ख गुरुद्वारा साहिबान को पंथक हाथों में लेने के लिए सिक्खों द्वारा दी गयी शहादतों में जरग गांव के बच्चे दरबारा सिंघ द्वारा श्री ननकाणा साहिब में दी गयी शहादत भी अच्छे संस्कारों का ही श्रेष्ठ परिणाम थी।

गत दिनों अमेरिका में घटित हुई घटना हम सबका ध्यान अपनी ओर केंद्रित कर हमें सोचने के लिए मज़बूर कर रही है। अमेरिका में माताएं अपने बच्चों के जन्म के कुछ दिन बाद ही उनको अपना दूध पिलाना बंद कर देती हैं। इसमें उनकी आर्थिक पक्ष से मज़बूरी भी मानी जाती है। गत दिनों इसी तरह जब एक मां अपने बच्चे को अस्पताल में छोड़कर खुद नौकरी पर चली गयी तो उसके बच्चे ने बोतल के दूध को मुंह न लगाया। मां को बुलाकर उसका दूध पिलाया गया। बच्चा दूध पीने के उपरांत ही गहरी नींद में सो गया। कई दिनों की मेहनत के बाद जब बच्चे ने पुन: बोतल का दूध न पिया तो डॉक्टरों ने मां के दूध का टेस्ट करने की ठानी। परिणाम आश्चर्यचकित था। मां के दूध में ६० प्रतिशत से ज्यादा अलकोहल के अंश थे। सोचने की बात है कि अगर मां के पेट में पल रहे शिशु पर बुरे कामों का प्रभाव पड़ता है तो अच्छे कामों का प्रभाव भी पड़ता है। यही कारण है कि अच्छी माताएं गर्भ में ही बच्चों को अच्छे संस्कार देने के लिए गुरबाणी एवं अच्छा साहित्य पढ़ना, अच्छे कार्य करना प्रारंभ कर देती हैं।

आज हमें इन सबका मूल्यांकन करने की आवश्यकता है कि हम गुरु साहिबान द्वारा मिली शिक्षा का संचार उचित ढंग से बच्चों में कर रहे हैं या नहीं! आज हमारे बच्चे आलसी, लालची, नशेड़ी, खुदगर्ज क्यों होते जा रहे हैं? इन सब पर प्रतिबंध लगाने एवं संसार में उदाहरण के रूप में अच्छे सिक्ख चरित्र पैदा करने के लिए हमें बच्चों की देखभाल एवं परवरिश की ओर विशेष ध्यान देना ही पड़ेगा, अपनी जिम्मेदारी समझनी ही पड़ेगी; गुरमति का ज्ञान बचपन से ही बच्चों में भरना पड़ेगा ताकि वे अच्छे संसार की रचना करने के समर्थ हो सकें।



सरहिंद शहर एवं साका सरहिंद : ऐतिहासिक जानकारी

-सिमरजीत सिंघ*

सरहिंद एक प्राचीन शहर है। इसका अनुमान इसके आस-पास के शहरों में से निकलती प्राचीन ईंटों, ठीकरों, टूटे ठूठों तथा मिट्टी के बर्तनों से मालूम पड़ता है। कई लोगों का विचार है कि इसका नाम 'सरहिंद' मुसलमानों ने मुगल-काल के दौरान रखा था क्योंकि यह हिंदोस्तान के सर पर (सर-हिंद) उत्तर की दिशा में आखिरी शहर था। यह बात सही नहीं लगती क्योंकि यह स्थान मुसलमानों के यहां आने से बहुत पुराना है। इसका मूल प्राचीन आर्य लोगों से जुड़ता है। हो सकता है कि यह उनसे भी पहले का हो। इसका ज़िक्र सबसे पहले 'प्राशर संहिता' में आता है जहां से लेकर वराह मिहरी ने अपनी 'वृहत-संहिता' में इसका ज़िक्र किया है। वराह मिहरी महाराजा विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक है। वह लिखता है कि सिहृंद शहर शतुदर देश का मुख्य स्थान होता था। यहां सैरिंध नाम की आर्य जाति के लोग बसते थे। सैरिंध लोगों के नाम से ही उनके इस मुख्य नगर का नाम सिहृंद पड़ गया। शतुदर देश एक विशाल इलाका था। आधुनिक भूगोल के अनुसार हिमाचल प्रदेश की ऊना तहसील श्री अनंदपुर साहिब तथा कीरतपुर साहिब के इलाके नालागढ़ तथा शिमले के इलाके, अंबाला तहसील का उत्तर दिशा का ऊपरी हिस्सा, सरहिंद (फ़तहगढ़ साहिब), राजपुरा, ज़िला लुधियाना, नाभा तथा पटियाला आदि शतुदर देश में आते हैं।

यह भी ज़िक्र है कि सरहिंद शहर को पंजाब में सालबाहन के पुत्र सार राउ ने बसाया था। उस समय इसके बड़े भाई रिसालू के अधीन भादसों, होडला तथा सुनाम आदि परगने थे। हांसी में इसके भाई हंस राय का राज्य था। झंडू राय का हिसार में राज्य था। फिरोज़शाह तुगलक ने इस नगर को बहुत तरक्की दी। अकबर के समय यहां ५२ लाख की आमदनी वाले ३२ परगनों की सरकार बनी। मुसलमान बादशाहों ने इसको हिंद का दरवाज़ा समझकर बहुत प्रफुल्लित किया। कहते हैं कि यह नगर १२ मुरब्बा मील में बसता था। यह सरकार 'मदर देश' अथवा 'गुरु के मालवे' की रूप-रेखा बनाने की आज तक प्रतीक मानी जाती है।

अलबरुनि अपनी पुस्तक 'अल-हिंद' में लिखता है कि पहले यहां सूर्यवंशी राजे राज्य करते थे। बाद में हिंदू राज्य के समय में यह लाहौर (राजधानी बठिंडा) के पाल राजाओं का मशहूर सरहदी शहर होता था। उनकी दक्षिणी सरहद थानेसर से दक्षिण तक जाती थी। फरिश्ता की लिखित के अनुसार सरहिंद, काबुल के ब्रह्मणशाही राजाओं की चढ़दी सरहद होती थी। वलि-उल-सदीकी अपनी पुस्तक 'आइना बागड़ बंस' में लिखता है कि इस शहर का नाम 'सरहिंद राउ' लाहौर के राजे लोमान राउ द्वारा ५३१ बिक्रमी संवत में इसकी बुनियाद रखने के कारण पड़ा। कई इतिहासकारों का विचार है कि नूर-उद-दीन ने इसका नाम 'सीह' तथा 'हिंद' को जोड़कर बनाया। इसका भाव है-- 'शेरों का

*संपादक, गुरमति ज्ञान/गुरमति प्रकाश, मो. ९८१४८-९८२२३

जंगल।' उस समय यह इलाका शेरों और चीतों के भारी जंगलों वाला था, जिसके कारण इसका नाम **'सरहिंद'** पड़ गया। १०११ ई में महमूद गज़नवी ने पहली बार इसको थानेसर के मंदिरों तथा अन्य शहरों को लूटा व तबाह कर दिया। किंतु हिंदू राज्य यहां से तब खत्म हुआ जब ११९३ ई में मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज चौहान को पकड़कर कत्ल करवा दिया। गुलाम घराने के सुलतान मलिक नासिरुद्दीन कबचा ने १२१० ई में इस इलाके पर कब्जा कर लिया। नासिरुद्दीन (१२४६-१९६६ ई) के समय बलबन के भतीजे शेर खां ने सरहिंद में एक किला बनवाया। १३६० ई में फिरोज़शाह तुगलक ने सरहिंद को समाणा की हकूमत से अलग करके इस अधीन २८ परगने कर दिए तथा इसको ज़िले का सरद मुकाम बना दिया। सिरमौर की पहाड़ी को काटकर सतलुज दरिया का पानी सलीमा नदी में डाल दिया तथा सरहिंद की नहर (हंसली) बना दी, जिससे सुनाम तक का इलाका खुशहाल हो गया। फिरोज़शाह तुगलक ने १३६० ई में हंसली के किनारे एक बहुत बड़ा किला बनवाया। हंसली को आजकल सरहिंद चोअ के नाम से जाना जाता है। पहले सैय्यद बादशाह सैय्यद खिजर खां के अंतिम दिनों में सरहिंद की हकूमत लोधी अफगानों के पास चली गयी। इसने १४१५ ई में अपने पुत्र मालिक मुबारक को फिरोज़पुर तथा सरहिंद का गवर्नर स्थापित किया। साधू नादरा को उप-गवर्नर स्थापित किया। १४१६ ई में तमाम रईस तथा अन्य लोगों ने साधू नादरा का कत्ल कर दिया। अगले वर्ष इस बगावत को समाणे के गवर्नर जीरक खां ने दबा दिया। सैय्यद मुबारक शाह (१४२१-१४३५ ई) के समय गक्खड़ों ने लाहौर तथा जलंधर पर कब्ज़ा करने के बाद सरहिंद पर हमला किया। यहां का हाकिम इस्लाम शाह बड़े संकट में था, परंतु शाही फौज दिल्ली से आ पहुंची तथा गक्खड़ अक्तूबर, १४२१ ई में पुनः लाहौर चले गए।

बहलोल लोधी भी सरहिंद का निवासी था। वह यहां ही पला एवं बड़ा हुआ। यहां से ही १४०१ ई में सुलतान की उपाधि ग्रहण करके हाकिम बना। यहां से वह दिल्ली जाकर हिंदोस्तान का बादशाह बन गया। बाबर बादशाह ने १५२६ ई में इब्राहिम लोधी को पानीपत की लड़ाई में पराजित कर हिंदोस्तान का राज्य संभाल लिया। सरहिंद भी उसके क्ब्जे तले चला गया। **'तारीख-ए-सालातिन-ए-अफगीना'** के अनुसार इस समय सरहिंद के राजा खिलवार ने अपनी जिमींदारी कायम रखने के लिए बाबर को तीन गठरी स्वर्ण भेंट किया। इसके बाद सुलतान दुलंदी को सरहिंद का फौजदार नियुक्त किया गया। उस समय उसके अधीन १५ लाख की आमदन वाला इलाका आया।

१५२९ ई में पंजाब के गवर्नर मिर्ज़ा कामरान ने बाबर को पंजाब के जागीरदारों की मुलाकात के लिए लाहौर बुलाया। बाबर के पहुंचने से पहले उन्होंने मुगल राज्य की ईन मान ली। इसके साथ ही दिल्ली से सतलुज तक का इलाका मुगल राज्य के अधीन हो गया।

'ताबाकित-इ-अकबरी' के अनुसार बादशाह हुमायूं के समय राजकुमार अकबर को सरहिंद में बैरम खां के पास पढ़ने के लिए भेजा। **'तारीख-इ-हुमायूं'** के अनुसार मिकरी जंग-जंग को हुमायूं द्वारा सरहिंद सरकार का हाकिम स्थापित किया। आइने-अकबरी के अनुसार सिकंदर अफगान ने सरहिंद में हुमायूं के साथ भयंकर युद्ध किया। **'अकबरनामा'** के अनुसार अकबर के समय बैरम खां को सरहिंद का

फौजदार नियुक्त किया गया।

अकबर बादशाह को सरहिंद बहुत अच्छा लगा। उसने इसकी प्रसिद्धि को बढ़ाने के लिए समाणा एवं सुनाम भी सरहिंद सरकार के अधीन कर दिए। सरहिंद का सम्बंध सीधा दिल्ली के साथ जोड़ दिया गया। आइने-अकबरी के अनुसार इसके अधीन ५२ लाख की आमदन वाले ३२ परगने निम्नलिखित थे-- १. अम्बाला २. बनूड़ ३. पायल ४. भदौड़ ५. बठिंडा ६. परंदर ७. तिगड़ा ८. थानेसर ९. छत १०. चड़िक ११. खिजराबाद १२. दुराला १३. दरूत १४. देउगणा १५. रोपड़ १६. सरहिंद या हवेली १७. समाणा १८. सुनाम १९. सढौरा २०. सुलतानपुर (बाराह) २१. शाहबाद २२. फ़तहपुर २३. करयात राय सामू २४. कैथल २५. घुड़ाम २६. लुधियाना २७. मुसतफ़ाबाद २८. मसींगण २९. मनसूरपुर ३०. मालेर ३१. माछीवाड़ा ३२. हापरी। इसमें २२ तथा २३ नंबर का पता नहीं चलता कि कौन सी जगह पर है तथा परंदर भी सरस्वती नदी पर बसा कोई पुराना कस्बा हो सकता है क्योंकि इसका अर्थ है इंदर देवते का शहर (दैतों की ९९ पुरियों को दलने वाला पुरंदर-इंदर) आदि सरस्वती पर ही हो सकता है।

मुसलमान बादशाहों का लाहौर से दिल्ली जाते समय रास्ते का सबसे बड़ा पड़ाव सरहिंद में होता था, इसलिए किसी भी बादशाह के उतारे से दो-तीन महीने पूर्व शहर में गर्मागर्मी हो जाती थी। मुगलों की हकूमत के समय सरहिंद एक बड़ी घणता वाला शहर बन गया था। कहा जाता है कि उस समय यहां ३६० मसजिदें, मकबरे, सराय एवं कूप थे।

'आइने-अकबरी' के अनुसार कुछ समय के लिए मिर्ज़ा रुस्तम भी सरहिंद में नियुक्त किया गया। 'मीनार-उल-उमरा' के अनुसार अकबर के बाद शाहजहान के समय १६३० ई में सरहिंद के सूबे के सम्बंध मुगलों के साथ सुखमय नहीं रहे। १६३१ ई में शाहजहान ने पहले राय काशी दास तथा बाद में दियानत खां को दीवानी, अमीनी तथा फौजदारी के पद सौंपे। इनके बाद टोडर मल्ल को राय दीवान की पदवी देकर उक्त सभी अधिकार दिए गए। दीवान टोडर मल्ल के कार्य से खुश होकर बादशाह ने १६४८ ई में राजा का खिताब दिया। बादशाह ने दियालपुर, जलंधर एवं सुलतानपुर लोधी के ५० लाख रुपये की आमदन का इलाका भी दे दिया। दीवान टोडर मल्ल के कामों से जनता भी खुश थी। बादशाह ने इसके कामों से खुश होकर खिलत भी दे दी। हाथी, घोड़े सम्मान के रूप में दिए गए। दीवान टोडर मल्ल के समय में सरहिंद ने बहुत उन्नति की।

शाहजहान के बाद औरंगजेब के समय में सरहिंद का प्रबंध दीवान टोडर मल्ल से लेकर मीर बाकिर खां, अब्दुल अज़ीज खां के बाद वज़ीर खां सूबा-सरहिंद के पास आया। यहां से ही साका सरहिंद की शुरूआत हो गयी। इसको बयान करने वाले इतिहासकार, संसार-प्रसिद्ध करबला के दुखांत से भी बड़ा मानते हैं।

दिसंबर, १७०४ ई के दिन साहिबज़ादा ज़ोरावर सिंघ तथा साहिबज़ादा फ़तहि सिंघ, उनके साथ उनकी दादी माता गुजरी जी को मोरिंडे का कोतवाल वज़ीर खां के पास सरहिंद छोड़ गया। 'गुर बिलास पातशाही दसवीं' में इसका ज़िक्र है कि जब साहिबज़ादों को सरहिंद लाया गया तो उस समय उन्होंने नीले वस्त्र पहने हुए थे। उनके खूबसूरत बदन इस तरह लग रहे थे, जैसे बादलों में बिजली चमक रही हो। हाथों में हथकड़ियां एवं पांवों में बेड़ियां डाली हुई थीं :

नीले झगीआं तन मो कैसे।
बिजली सयाम अभ्र मै जैसे।
कोमल अमग हथोड़ी हाथा।
पाद जंजीरी तिनु को साथा।
कचहिरी विच पेश होण वेले उन्हा केसरी बाणा सजा लिया-- केसरी अंग पोशाक महाबर।

उनको देखकर सूबेदार के मन में आया कि इन्हें दीन-ए-मुहम्मदी में लाना चाहिए।

इन तीनों को सरहिंद के किले के ठंडे बुर्ज में कैद कर दिया गया। ठंडे बुर्ज को सर्द बुर्ज भी कहा जाता है। सरहिंद शहर के चारों तरफ एक दीवार थी। उसमें आठ बुर्ज थे। ठंडा बुर्ज उसको इसलिए कहा जाता था कि यह १४० फुट ऊंचा था तथा इसके साथ ठंडे पानी का नाला बहता था, जिस कारण यह बहुत ठंडा रहता था तथा सूबा गर्मी के दिनों में यहां पर ठहरा करता था। अति सर्दी के दिनों में वृद्ध माता गुजरी जी छोटे-छोटे बच्चों को अपनी आगोश में लेकर उष्णता देने की कोशिश कर रहे थे। माता जी साहिबज़ादों को धर्म पर डटे रहने की शिक्षा दे रहे थे। यहां भाई मोती राम नाम का सज्जन नवाब वज़ीर खां का रसोइया था। यह गुरु-घर का श्रद्धालु भी था। वह माता जी एवं साहिबज़ादों को अपनी जान की परवाह किए बिना ठंडे बुर्ज में दूध पहुंचाता रहा। इस बात का पता चलने पर नवाब वज़ीर खां ने उसको सारे परिवार सहित कोल्हू में भींचकर शहीद कर दिया।

सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खां ने साहिबज़ादों को कचहरी में पेश करने का आदेश दिया। हुक्म की तामील करते हुए दीवान सुच्चा नंद की अगुआई तले सिपाही ठंडे बुर्ज से माता गुजरी जी से साहिबज़ादों को ले आए। अल्ला यार खां योगी ने इस घटना को कलम-बंद करते हुए लिखा है :

बच्चों को लेने आए गरज चंद बे-हया,
सरदार इनका कहते कि सुच्चा नंद था।

माता गुजरी जी से साहिबज़ादों की जुदाई का समय सर पर आ पहुंचा। अल्ला यार खां योगी इसके बारे में माता गुजरी जी के विचार कलम-बंद करता हुआ लिखता है कि :

जाने से पहले आओ गले से लगा तो लूं।
केसों को कंघी करूं ज़रा मुंह धुला तो लूं।
प्यारे से सरों पर नन्ही सी कलगी सजा तो लूं।
मरने से पहले तुम को दूल्हा बना तो लूं।

साहिबज़ादों को लेकर कचहरी में पेश करने के लिए सिपाही पैदल ही वज़ीर खां की कचहरी की ओर चल दिए। जब वे कचहरी के समीप पहुंचे तो साहिबज़ादों ने देखा कि बड़ा दरवाज़ा बंद कर दिया गया है। छोटी खिड़की खुली है, जिसके भीतर जाने के लिए सिर झुकाना पड़ता है। सूझवान साहिबज़ादे हाकिमों की बात समझ गए। बड़ी चुस्ती से पहले उन्होंने पांव अंदर किए और बिना शीश झुकाए अंदर दाख़िल हो गए। वज़ीर खां की कचहरी लगी हुई थी। साहिबज़ादों ने अंदर पहुंचते ही ज़ोर से फ़तहि बुलाई :

वाहिगुरु जी का खालसा,
वाहिगुरु जी की फ़तहि ॥

उनके ऊंचे जैकारे से कचहरी गूंज उठी तथा सबकी नज़रें बहादुर तथा निडर साहिबज़ादों पर टिक गयीं। सूबेदार ने उनको इसलाम कबूल करने के लिए कहा। कई तरह की यातनाओं के अतिरिक्त लालच भी दिए गए। यह कहा गया कि औरंगजेब से आपकी मुलाकात भी करवाते हैं, राज्य ले देते हैं, रेशमी वस्त्र पहनो, शहजादियों के हिंडोले ले लो, सिर्फ इसलाम कबूल कर लो :

तुमे साह के मेल करावै।
बहु देसन को राज दिवावै।

पट भूखन तुम अनमन दै है।
दुखतर सहित सूबतर ह्वै है।
जोती नार चाह जो दे ही।
नील पटंबर धारो ए ही।

परंतु शूरवीर साहिबज़ादों ने सब प्रकार के लालच ठुकरा दिए। उन्होंने कहा कि वे अपने धर्म पर डटे रहेंगे चाहे इसके बदले में शहादत ही क्यों न देनी पड़े :

हमरे बंस रीत इम आई।
सीस देत पर धरम न जाई।

तो सुच्चा नंद ने कहा :

इह मूए बिन नहि कलयानी।

'कथा गुरु जी के सुतन की' में भाई दुन्ना सिंघ ने लिखा है कि चाहे कितना ही दुख दिया गया किंतु साहिबज़ादे दृढ़ रहे :

बाल बुलाइ लए जब ही,
तब आन अदालत बीच पठाए।
देखत है सभ ही जग आइ,
मनहु फूल गुलाब सुहाए।
तहि मलेछ लगे दुख देवन,
चाहत है खल दीन मिलाए।
नाहि मंनै दुख सीस सहै,
द्रिड़ता हरि आप दई तिन आए।

हार मानकर सूबे ने उनको दूसरे दिन फिर पेश करने का हुक्म दे दिया।

अगले दिन फिर कचहरी लगी। साहिबज़ादों को पेश करने का हुक्म हुआ। वही प्यारे बच्चे पहले से भी ज्यादा चढ़दी कला में पेश हुए। सूबेदार आक्रोश में आपे से बाहर हो गया। उसकी कोई पेश नहीं जा रही थी। काज़ी को साहिबज़ादों का कसूर बताकर उनको सज़ा देने के लिए कहा। काज़ी ने कहा कि इसलाम मासूम बच्चों को उनके बाप के किए अपराध की सज़ा देने की इज़ाजत नहीं देता। मलेरकोटला का नवाब शेर मुहम्मद खां भी हाजिर था। सूबे ने शेर मुहम्मद खां के जज़बातों को भड़काने की कोशिश की। इसको कहा कि उसके भाई नाहर खां को तथा उसके भांजे खिजर खां को गुरु गोबिंद सिंघ जी ने चमकौर के युद्ध में मार दिया था। वह उनका बदला इन बच्चों से ले ले। नवाब शेर मुहम्मद खां ने इस दलील को न सिर्फ रद्द किया बल्कि हाअ (हाय) का नारा भी मारा कि मासूम बच्चों पर ज़ुल्म करना उचित नहीं :

बदला ही लेना होगा तो हम लेंगे बाप से।
महिफूज़ रखे हम को खुदा ऐसे पाप से।

इसका वर्णन 'महिमा प्रकाश वारतक' में इस तरह किया गया है-- "इह शीरखोर लड़के हैनि, इन की बदी चाहना बड़ा अजाब है।"

नवाब मलेरकोटला का यह दिलेरी भरा जवाब सुनकर सुच्चा नंद ने अपनी मलिन बुद्धि से भरपूर एक वार और किया :

उन कहयो नवाब, इह सरप बिसूरे।
छोटे बड़े ए डस्सग ज़रूरे।
यह बात सुनकर- सूबेदार को खौफ़ खुदा का हुआ।
सुच्चा नंद ने कहा- इह शीर नहीं, शेर के बच्चे हैं।
जद सिआणे होइंगे तद इह तूफान उठावेंगे।
अर इन को सलाम करन नूं कहि, इह नहीं करनगे।
वज़ीर खां ने कहा- इन को कहो सलाम करो।
सुच्चा नंद ने कहा- सूबे को सलाम करो।

तब साहिबज़ादों ने वचन किया :

जो हम ने सच्चे पातशाह को सलाम कीआ है,
अउर को सलाम नहीं करते।

सुच्चा नंद ने मौका संभालकर कहा :

जो मैं अरज़ कीआ सो आप ने देखा।

इस बात को चित्त में देखकर सुच्चा नंद दृढ़ हो गया और उसने जल्लाद को कहा :
इस तरह इह कारा हूआ।

आज भी बात किसी सिरे न लगती देखकर अगली पेशी रखी गयी। फिर वही बात कि इसलाम कबूल करो, किंतु साहिबज़ादे अडोल, शांत तथा बेपरवाह रहे और वैसे भी जिन बच्चों ने बचपन में दादे, पड़दादे की बहादुरी के किस्से अपनी दादी से सुने हों, श्री अनंदपुर साहिब में शूरवीर सिक्खों को अपने धर्म के लिए अपनी आंखों से शहीद होते देखा हो, भाई बचित्तर सिंघ जैसे शूरवीर को हाथी के साथ लड़ता देखा हो, उनको धर्म बदलने के लिए कोई लालच या डर क्या कर सकता था। इतिहासकार मुहम्मद लतीफ 'पंजाब का इतिहास' में लिखता है कि जब सूबे ने बच्चों को पूछा कि अगर आपको आज़ाद कर दिया जाए तो आप क्या करोगे? साहिबज़ादों का उत्तर था, हम सभी सिंघों को इकट्ठा करेंगे। उनको हथियार जुटाएंगे। तुम्हारे साथ लड़ेंगे और तुम्हें मृत्यु के घाट उतारेंगे। नवाब ने फिर पूछा कि अगर आप जंग में हार गए तो फिर क्या करोगे? इस पर साहिबज़ादों का फिर वही उत्तर था कि करना क्या है? फिर अपनी फौजें इकट्ठी करेंगे। तब तक लड़ते रहेंगे जब तक तुम लोग खत्म नहीं हो जाते या हम शहीद नहीं हो जाते।

इस बात का ज़िक्र मिलता है कि बच्चों की परख करने के लिए अच्छे-अच्छे कपड़ों, खिलौनों, मिठाइयों तथा जंगी साजो-सामान की दुकानें सजाई गईं। जब बच्चों को उन दुकानों के पास ले जाया गया तो वे अन्य दुकानों को छोड़कर हथियारों वाली दुकान पर जा खड़े होते तथा उनकी जांच-परख करने लगते।

दूसरी तरफ जब सरहिंद की संगत ने साहिबज़ादों को नीवों में चिनकर शहीद करने के फतवे के बारे में सुना तो शहर के कुछ मुखियों ने दीवान टोडर मल्ल के घर इकट्ठ किया। सलाह-मशविरे के दौरान मता पकाया कि इसके तोल के बराबर सोना देकर बच्चों को बचा लिया जाए। एक समझदार सिक्ख ने कहा कि मुगलों को आप नहीं जानते, यह होकर ही रहना है। ये सोना भी रख लेंगे और उनको शहीद भी कर देंगे :

सीरंद की संगत सबै, मन मैं करत बीचार।
तोल सुइन कर दीजीऐ, कनक याहि निरधार।
एक सिक्ख तब यों कही सवरन लेहिंगे लूट।
होवग सो गुर ते ठटी हमरी कहा पहूट।

दीवान टोडर मल्ल की अगुआई तले एक वफ़द वज़ीर खां को मिला। वज़ीर खां ने इस वफ़द को झूठा भरोसा दिलाया कि गुरु-परिवार का पूरा ख़्याल रखा जाएगा।

उधर कोई भी जल्लाद साहिबज़ादों को शहीद करने के लिए नहीं मान रहा था। दिल्ली के जल्लाद शाशल बेग और बाशल बेग समाणा के रहने वाले थे। इन पर कत्ल के सम्बंध में सरहिंद की कचहरी में मुकद्दमा चल रहा था। नवाब वज़ीर खां ने मुकद्दमा बर्खास्त करने की शर्त पर उनको साहिबज़ादों को ज़िबह करने के लिए मना लिया। इस तरह पहले मासूम बच्चों को ज़िंदा ही दीवार में चिन दिया तथा बाद में ज़िबह करके शहीद कर दिया गया। भाई रतन सिंघ (भंगू) 'प्राचीन पंथ प्रकाश' में लिखते हैं :

हुतो उहां थो छुरा इक वारो,
दै गोडे हेठ, कर ज़िबह डारो।
तड़फ-तड़फ गई जिंद उडाइ,
इम शीर खो दुइ दए कतलाइ।

भाई सुक्खा सिंघ 'गुर बिलास' में लिखते हैं :
दोउ सीसन के सीस उतारी।

दए काट उन अधम गवारी। *(पृष्ठ २७४)*

दुनिया के लालचों तथा आकर्षणों का साहिबज़ादों के दृढ़ इरादों पर कोई फर्क न पड़ा। इसका बड़ा कारण वह पिता पुरखी पूंजी थी, जो उन्होंने अपने पूर्वजों से प्राप्त की थी। नि:संदेह ही शांति के पुंज श्री गुरु अरजन देव जी, श्री गुरु तेग बहादर साहिब, भाई सती दास जी, भाई मती दास जी तथा भाई दिआला जी आदि द्वारा दी गयी शहीदियां बच्चों के मन को अडोल रखने में सहायक बनीं। हिंदी के राष्ट्रीय कवि 'मैथिलीशरण गुप्त' ने अपने महाकाव्य 'भारत भारती' में इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि :

जिस कुल जाति कौम के बच्चे,
दे सकते हों यूं बलिदान।
उसका वर्तमान कुछ भी हो,
पर भविष्य है महा महान।

बच्चों की शहीदी की ख़बर माता गुजरी जी के पास पहुंचाने के लिए दीवान टोडर मल्ल को कहा गया जो कि एक सफल व्यापारी था तथा गुरु साहिबान की शिक्षाओं का अनुयायी था। उसने उदास मन से माता जी को यह दुखदायक ख़बर सुनायी तो वे ठंडे बुर्ज में बंद अति सर्दी न सहन करते हुए शहीदी प्राप्त कर गए। बच्चों को शहीद करके उनके और माता जी के मृत शरीरों को बाहर रख दिया। दीवान टोडर मल्ल ने जोख़िम उठाते हुए वज़ीर खां के पास मासूम बच्चों एवं माता जी का अंतिम संस्कार करने की इच्छा प्रकट की। वज़ीर खां द्वारा फौरन एक फरमान जारी कर दिया गया कि इनका अंतिम संस्कार सरहिंद की धरती पर नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सारी धरती मुगल सलतनत की है। अंतिम संस्कार के लिए दीवान टोडर मल्ल ने जगह मोल खरीदने की बात की। वज़ीर खां ने इस पर बहुत ही सख़्त शर्त रख दी कि जितनी जगह खरीदनी है, उतनी जगह पर खड़े रुख मुहरें चिनी जाएं। दीवान टोडर मल्ल ने धन इकट्ठा करके अंतिम संस्कार के लिए मुहरें खड़े रुख चिनकर मुहम्मद अत्ता नाम के एक चौधरी से थोड़ी सी जगह खरीदी, जिस पर तीनों का अंतिम संस्कार किया गया।

ज़िला फ़तिहगढ़ साहिब में यह ज़मीन का टुकड़ा दुनिया की सबसे महंगी धरती के रूप में आज भी मौजूद है, जो दीवान टोडर मल्ल ने धरती पर खड़े रुख सोने की मुहरें चिनकर खरीदा था। इससे पहले या इसके बाद आज तक दुनिया की कोई भी धरती इतनी कीमत पर नहीं खरीदी गयी। दूसरी तरफ जिस धन के लालच में गंगू ने इतना बड़ा पाप किया था, वही धन उसकी मृत्यु का कारण बना। मिली रिपोर्ट के आधार पर जानी खां तथा मानी खां ने नवाब वज़ीर खां को बताया कि माता गुजरी जी, जो मुहरों की गठरी लेकर आए थे, वह गंगू के पास है। वज़ीर खां ने वह राशि सरकारी खज़ाने में जमा करवाने के लिए कहा। गंगू ने मानने से इंकार कर दिया, तो हाकिमों ने इसकी मार-पीट शुरू कर दी। मार-पीट के बाद वह राशि देने के लिए मान गया। उसने कई स्थान बताये जहां धन दबाया था किंतु धन किसी जगह से भी नहीं मिला, क्योंकि वह धन बाढ़ के पानी के बह चुका था। हाकिम समझते कि गंगू जान-बूझकर धोखा दे रहा है। सिपाहियों ने फिर गंगू को मारना शुरू कर दिया, जिसका परिणाम यह निकला कि सरकारी आदमियों से मार खा-खाकर मर गया।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी से अमृत की दात प्राप्त करके माधो दास से बाबा बंदा सिंघ बहादुर बने महान सिक्ख योद्धे ने १२ मई, १७१० ई को सरहिंद पर धावा बोल दिया।

सरहिंद के पास चप्पड़-चिड़ी के मैदान में जंग हुई थी, जिसमें ज़ालिम सूबा सरहिंद वज़ीर खां मारा गया। इस लड़ाई में ६००० सिक्ख भी शहीद हो गए। फ़तहि प्राप्त करने के बाद सुच्चा नंद को गिरफ़्तार कर लिया गया। उसके नाक में नकेल डालकर उसको हाट-बज़ार घुमाया गया। हर जगह उसे जूते पड़ते थे और वह जूतियां खाता-खाता नरक में जा पहुंचा। सरहिंद की विजय के बाद सरहिंद के परगनों के फौजदारों ने ईन मान ली। दीवान टोडर मल्ल अपने साथियों सहित बाबा बंदा सिंघ बहादर को मिले तथा सत्कार के तौर पर उसे बड़ी रकम भी भेंट की। बंदा सिंघ बहादर ने टोडर मल्ल से वज़ीर खां तथा उसके अहिलकारों द्वारा भोली-भाली जनता पर किए अत्याचारों की सभी घटनायें सुनी। दीवान टोडर मल्ल को साथ लेकर माता गुजरी जी तथा साहिबज़ादों की अंतिम संस्कार वाली जगह की निशानदेही करके उसके गिर्द चार दीवारी बना दी। सरहिंद के पूरे सूबे की आमदन ३६ लाख रुपये थी। बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सरहिंद फ़तहि करने के बाद दरबार लगाया। इलाके के जाने-माने चौधरी दरबार में हाज़िर हुए। चरनारथल का चौधरी तथा जरग का चौधरी मुहरों का थाल तथा गुर्ज लेकर पेश हुए। इन्होंने बाबा बंदा सिंघ बहादर की ईन मान ली। बाबा बंदा सिंघ बहादर ने भाई बाज सिंघ को सरहिंद का गवर्नर तथा भाई आली सिंघ सलौदी को सहायक गवर्नर स्थापित कर खुद सढौरे के समीप एक छोटे से पहाड़ी किले (लोहगढ़) में चला गया। यह राज्य ज्यादा देर कायम न रह सका।

१४ जनवरी, १७६४ ई को सरहिंद के नवाब जैन खां को हार देकर सिंघों ने सरहिंद को फिर फ़तहि कर लिया। सिक्ख सरदारों, जिनमें फूलकीआ मिसल का काफी हाथ था, ने पवित्र गुरुधामों की ओर तुरंत ध्यान दिया। सरहिंद की फ़तहि के बाद कोई भी इस शहर को अपने कब्जे में नहीं था लेना चाहता क्योंकि साहिबज़ादों पर हुए कहर के कारण इस जगह को मनहूस समझा जाता था। इसलिए गुरमता करके सिंघों ने यह शहर भाई बुड्ढा सिंघ, जो प्रसिद्ध भाई भगत सिंघ जी की अंश में से थे को अरदास करवा दिया तथा उनसे फिर पटियाले के महाराजा तथा फूलकीआ मिसल के सरदार आला सिंघ ने २ अगस्त, १७६४ ई को २५००० रुपये में खरीद लिया। पुराने सिक्ख अभी भी इसको गुरु-मारी सरहिंद कहते हैं। फूल-वंशी बाबा आला सिंघ ने सरहिंद पर कब्जा करने के उपरांत १२ मिसलों के मिलने से सबसे पहला काम छोटे साहिबज़ादों की यादगार गुरुद्वारा फ़तहिगढ़ साहिब का शिलन्यास किया।

रियासत पटियाला के महाराजा करम सिंघ ने १८१३ ई में साहिबज़ादों की अद्वितीय शहीदी के साके को सदैवकालीन रूप में सजीव रखने के लिए एक गुरुद्वारा साहिब बनाने की योजना बनाई। उन्होंने न केवल गुरुद्वारा जोती सरूप की ही सेवा की, बल्कि लंगर की प्रथा भी शुरू की। महाराजा नरिंदर सिंघ ने अपने पूर्व उत्तराधिकारियों के परलोक सिधार जाने के बाद उनकी योजनाओं को संपूर्ण किया।

स्रोत पुस्तकें :

१. भाई कान्ह सिंघ नाभा-- गुरशबद रतनाकर महान कोश

२. डॉ फौजा सिंघ-- सरहिंद थरू दी एज़िज

३. डॉ गंडा सिंघ-- बंदा सिंघ बहादर

४. स. रछपाल सिंघ-- पंजाब कोश

५. डॉ रतन सिंघ जग्गी-- सिक्ख पंथ विशवकोश

६. डॉ गंडा सिंघ-- पंजाब



जागो फिर एक बार!
बच्चों के आदर्श : साहिबज़ादे

*-प्रो सुरिंदर कौर**

हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जब सरहिंद में छोटे साहिबज़ादों की शहीदी यादगार से मुखातिब हुए तो अत्यंत ही भावविभोर हो उठे और वहीं उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास की अति प्रसिद्ध कविता 'जागो फिर एक बार' की रचना की। इसमें साहिबज़ादों के अप्रतिम बलिदान का हवाला देकर उन्होंने वर्तमान कौम को फिर से आत्मिक रूप से जागृत होने का आहवान किया है।

चारों साहिबज़ादों की शहादत सिक्ख इतिहास का वो सबसे गौरवशाली अध्याय है, जिसने न केवल अपने वर्तमान को प्रभावित किया वरन् अनंत भविष्य के लिए एक अटल प्रकाश-स्तंभ भी बन गया, जिससे प्रेरणा लेकर सिक्ख हर काम में अपनी आने वाली पीढ़ियों को मार्गदर्शन देते रहेंगे। यही कारण है कि हम वर्तमान संदर्भ में भी उन्हीं के जीवन को मानक बनाकर अपनी कौम के बच्चों का व्यक्तित्व उभारने का प्रयास कर रहे हैं।

बच्चे कच्ची मिट्टी की भांति आकारहीन होते हैं। यदि उन्हें सही समय पर आकार दे दिया जाए तो निश्चित ही वे सिक्खी को जीवन-शैली के रूप में अपनाएंगे वरना बड़े होने पर उन्हें इस ओर परिवर्तित करना कठिन हो जाएगा। जैसे पक्के बर्तन को आकार देना संभव नहीं है, वैसे व्यस्त मन-मस्तिष्क को किसी अन्य दिशा की ओर मोड़ना सहज नहीं है। स्वयं हमारे बच्चे भी यदि अपनी रुचि से अपने जीवन के कनवास को गुरमति के रंग में रंग लें तो इससे श्रेयस्कर और कुछ नहीं होगा। सिक्ख इतिहास इसका गवाह है कि बच्चों के हृदय में बोया गया सिक्खी का बीज समय आने पर छतनार वृक्ष बन गया। कष्टों के थपेड़े और जुल्मों की आंधियां भी उसकी जड़ों को नहीं हिला पाईं। सिक्ख इतिहास की अति सम्माननीय हस्ती बाबा बुड्ढा जी बहुत छोटी आयु में श्री गुरु नानक देव जी की शरण में आकर सिक्खी रंग में रंग गए थे। भाई जेठा जी (श्री गुरु रामदास जी) सात वर्ष की आयु में अनाथ होते हुए भी नैतिक जीवन-मान के अनुगामी थे। श्री गुरु अरजन देव जी की आध्यात्मिक रुचि देखकर बचपन में ही उन्हें 'बाणी का बोहिथा' होने का आशीर्वाद मिल गया था। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी ने ११ वर्ष, श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब जी ने ५ वर्ष और दशमेश पिता श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने ९ वर्ष की आयु में गुरुतागद्दी की महान जिम्मेदारी को संभाला। इतिहास इनकी आयु और जीवन-कर्मों को देखकर सदा हैरान होता रहा है।

इसी महान कौम की संतानों ने एक कदम और आगे बढ़ाते हुए गुरबाणी के साथ-साथ कुर्बानी की राहों को भी बुलंद किया। कलगीधर पिता के बड़े दो साहिबज़ादों ने चमकौर की जंग में दस लाख फौज का मुकाबला करते हुए शहादत दी और छोटे दोनों साहिबज़ादों ने भी समय की ज़ालिम हकूमत का डटकर मुकाबला किया। वे सरहिंद की दीवार में जिंदा चिन दिए गए। बाबा बंदा सिंघ बहादर के काल में उस

2, Banta Singh Chawl, Opp. Manish Park, Jija Mata Marg, Pump House, Andheri (E), Mumbai-400093, Mob. 8097310773

वीर बालक को कौन भूल सकता है जिसने सिक्खी की खातिर अपनी मां को झुठलाकर शहादत को गले लगाया, परंतु धर्म नहीं त्यागा? सिक्ख इतिहास के असंख्य पन्ने ऐसी ही अनगिनत रूहों की दास्तान से भरे हैं जिन्होंने बचपन में ही अपने आपको धर्म पर न्यौछावर कर दिया था।

वर्तमान समय में सिक्ख कौम अपनी नई पीढ़ी से कुछ हद तक उदासीन है और सभी ओर से इस पीढ़ी को सिक्खी के मार्ग पर लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में चारों साहिबज़ादों का जीवन और शहादत बच्चों में आदर्श गुणों की पुनर्जागृति में सबसे अधिक सहायक है। सकारात्मक दृष्टिकोण से हम प्रयासरत रहें तो निश्चित ही भविष्य उज्जवल होगा। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचना 'भारत भारती' में छोटे साहिबज़ादों की शहादत के उपलक्ष्य में कहा था :

जिस कुल जाति, कौम के बच्चे, दे सकते यों बलिदान।
उसका वर्तमान कुछ भी हो, भविष्य है महा महान।

अब प्रश्न यह उठता है कि साहिबज़ादों में वे क्या गुण थे जिन्हें हम आज की पीढ़ी में निरूपित करना चाहते हैं? उनमें ऐसी क्या विशिष्ट बात थी कि उनका नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों से लिखा गया?

यदि एक शब्द में इसका उत्तर देना हो तो यही बात सबसे सटीक है कि वे 'पूर्ण गुरसिक्ख' थे। उनका जीवन और शहादत, सभी सिक्खी ढांचे में ढलकर एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। सिक्खी जीवन-मान के वे लक्षण, जो शायद हम आज सारी उम्र लगाकर भी पूरी तरह नहीं समझ पाते हैं, उन्होंने जन्म-घुट्टी में ही आत्मसात कर लिए थे। इन गुणों की यहां संक्षेप में चर्चा कर लेना आवश्यक है जिन्हें हम अपने बच्चों में भी देखना चाहते हैं। चारों साहिबज़ादों ने इन गुणों को धारण करते हुए ही अनुपम इतिहास बनाया था :-

आध्यात्मिक और नैतिक जीवन की समझ : चारों साहिबज़ादों के जीवन में पग-पग पर हमें आध्यात्मिक चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। उनका समूचा जीवन गुरबाणी से ओत-प्रोत था। यदि आध्यात्मिक चेतना न होती तो वे इतनी निडरता से मृत्यु का सामना न करते। श्री गुरु नानक साहिब की पवित्र बाणी की पंक्ति-- *"आखा जीवा विसरै मरि जाउ"* का अनुसरण करते हुए उनके लिए धर्म परिवर्तन, आत्मिक मृत्यु के समान ही था, अत: उन्होंने आत्मिक जीवन के लिए भौतिक जीवन कुर्बान कर दिया।

यदि उनमें और हमारी वर्तमान पीढ़ी में अंतर खोजें तो सबसे बड़ा अंतर ही यह है कि आज बच्चों में अध्यात्म के प्रति अरुचि और नैतिकता का अभाव है। ठीक है कि आज का समाज पहले से ज्यादा व्यवहारिक हो गया है पर आध्यात्मिक भूख हर आत्मा में होती है और नैतिकता हर कौम की रीढ़ की हड्डी। बचपन से ही यदि सिक्ख घरों में बच्चों को सही माहौल मिले तो उनमें ऐसे गुण बड़ी सहजता से आ जाएंगे। बच्चा घर में अगर माता-पिता, दादा-दादी और अपने अन्य बड़ों को पाठ करते देखता है, कीर्तन करता देखता है तो वह भी धीरे-धीरे ऐसा ही करता है। आज भी कई घरों में ऐसे बच्चे मिलते हैं जो बड़ी छोटी उम्र से शबद की तुकों को सुनकर उन्हें गुनगुनाना शुरू कर देते हैं। बच्चे के सामने जैसा व्यवहार होता है वह उसके अनुरूप ही ढलता है। साहिबज़ादों ने भी तो ऐसे गुण अपनी विरासत से ही लिए थे। माता-पिता यदि थोड़ा और उद्यम करें और

बच्चे को धीरे-धीरे, छोटे-छोटे शबद याद करवाएं, साखियां सुनाएं, साहिबज़ादों की सचित्र जीवन-गाथा पढ़ाएं-सुनाएं तो बच्चा बचपन से ही अपनी कल्पना और बुद्धि द्वारा उन जैसा ही बनना चाहेगा। ऐसी स्थिति में बच्चों में एक सहज धार्मिक जीवन-शैली उभरेगी जो युवावस्था तक जाते-जाते ठोस होती जाएगी। गुरबाणी अनुसार आचरण करने वाला बच्चा नैतिकता को भी भली-भांति समझेगा। बचपन में निरूपित गुरबाणी उन्हें बड़ा होने पर भी धार्मिक मार्ग से दूर नहीं जाने देगी, बस, थोड़े से परिश्रम की आवश्यकता है।

अपनी अमूल्य विरासत पर गर्व : साहिबज़ादे अपने पंथ के उदात्त सिद्धांतों और स्वर्णिम इतिहास से पूरी तरह से अवगत थे व उस पर गर्व भी करते थे। उनके समकालीन हालात बहुत उथल-पुथल वाले थे। बेशक केंद्र में अभी मुगल राज्य ही था पर सारे देश में राजनैतिक अस्थिरता थी। धार्मिक संकीर्णता ने पूरे उत्तर भारत में अपनी जड़ें जमा ली थीं। ऐसे हालात में व्यस्कों के मुकाबले बच्चों का अपने धर्म से थिड़क जाना या जुल्म से डर जाना स्वाभाविक है, परंतु साहिबज़ादों ने न केवल सिक्ख धर्म के प्रति अपनी समझ और आस्था को ही प्रस्तुत किया वरन् इतने अत्याचारों के सामने दृढ़ रहकर अपनी जान तक कुर्बान कर दी। इन शहादतों ने सिक्खी के अनमोल इतिहास को और अधिक गौरवान्वित किया।

साहिबज़ादों के जीवन से प्रेरणा लेकर अगर हम भी बच्चों को छोटी उम्र से अपने धर्म के प्रति सजग करने में सफल हो जाते हैं तो निश्चित ही हमें भी हमारी अगली पीढ़ी पर गर्व होगा। ऐसा करना कोई मुश्किल बात नहीं है। बच्चों की रुचि कहानियों के प्रति अधिक होती है। यदि सिक्ख माता-पिता यह नियम बना लें तथा रोज केवल दस मिनट अपने बच्चों को दें, उन्हें रोज़ गुरु साहिबान के जीवन या सिक्ख इतिहास से संबंधित एक-एक साखी सुनाएं और अगले दिन उससे संबंधित दो-चार छोटे-छोटे प्रश्न पूछें तो वे बचपन से ही अपनी विरासत को गंभीरता से समझेंगे और बड़े होकर उसे गहनता से जानने में रुचि लेंगे।

यहां पर मैं कुछ बातें अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह रही हूं। मेरा जन्म और पालन-पोषण मुंबई में हुआ है, जिसे मायानगरी कहा जाता है। अच्छे-भले, सीधे-साधे लोग गांवों से यहां आकर, यहां की रंगीनियों में खचित हो जाते हैं। ऐसे में केवल सिक्ख परिवार ही नहीं हर (धार्मिक) परिवार को अपने बच्चों की चिंता लगी रहती है। स्पष्ट है कि यह चिंता मेरे माता-पिता को भी रही होगी। मेरे माता-पिता दोनों ही उच्च शिक्षित और व्यवसायरत थे या यह कह सकते हैं कि बहुत व्यस्त थे। उनके अतिरिक्त हमारे परिवार में मैं और मेरी छोटी बहन ही थी। मुंबई की भागदौड़ भरी इस व्यस्त जीवन-शैली में भी हमारे माता-पिता ने सिक्खी की शिक्षा के प्रति विशेष उपक्रम किए क्योंकि यहां अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की पढ़ाई और कल्चर में सिक्खी कहीं फिट नहीं बैठती थी। मुझे याद है, जब मैं तीन-साढ़े तीन वर्ष की थी तब से मेरे पिता जी रोज़ रात को सोने से पहले 'जनम साखी' से एक साखी पढ़कर हमें सुनाते और समझाते थे। उस आयु में मैं केवल साखी सुनती ही नहीं थी, उसे दिल-दिमाग में चित्रित भी किया करती थी। पता होता था कि अगले दिन स्कूल जाने से पहले माता जी उससे संबंधित प्रश्न पूछेंगी।

जैसे प्राय: बच्चे कहानियों में रंग जाते हैं वैसे ही हम भी रात को सोते समय साखियों के बारे में सोचते हुए सोते और उठते ही साखी

का मनन करने लगते। यह सुनने में बड़ा साधारण लगता है पर यही हमारे धार्मिक जीवन का आधार-स्तंभ भी था। होश संभालते-संभालते मैं अपने ही हमउम्र बच्चों से सिक्ख इतिहास के संदर्भ में कहीं आगे थी। हमारे माता-पिता को कभी हमें सिक्खी की ओर आने के लिए विशेष रूप से प्रेरित नहीं करना पड़ा। हम दोनों बहनों ने स्वेच्छा से अमृत-पान किया और मुंबई के **Ultra-Modern College Culture** में भी हम बड़े गर्व से सिर ढंककर, ककार सजाकर कॉलेज और यूनीवर्सिटी जाती थीं। सिक्खी हमारी जीवन-शैली बन गई और उन्हीं छोटी-छोटी साखियों ने मुझे सिक्ख दर्शन और इतिहास की खोज के मार्ग में **Ph.D.** तक पहुंचा दिया। हमें भी साहिबज़ादों की भांति अपनी विरासत पर गर्व है।

बस, यदि सिक्ख घरों में माता-पिता थोड़ा समय अपने बच्चों के लिए निवेश करें और इन्हें बचपन से ही छोटी-छोटी बातें सिखाएं तो इसमें कोई दो राय नहीं है कि बच्चे स्वयं भी अपने धर्म पर गर्व करेंगे और पतितपुने से बचे रहेंगे।

निर्भीकता : चारों साहिबज़ादों के स्वभाव में एक सच्चे सिक्ख की भांति निडरता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। ज़रा चमकौर की गढ़ी के दृश्य के बारे में सोचकर देखें कि सामने दस लाख की प्रशिक्षित सेना खड़ी है और पांच-पांच सिंघों के जत्थे के साथ नवयुवक साहिबज़ादा अजीत सिंघ और फिर नवकिशोर साहिबज़ादा जुझार सिंघ किस हिम्मत से लड़ने चले होंगे और कैसे अनेकों को मृत्यु के घाट उतारकर स्वयं भी शहीदी प्राप्त कर गए! जिस आयु में हमारे किशोर आज एक मौज-मस्ती की ज़िंदगी की ओर अग्रसर होते हैं उसी आयु में दोनों बड़े साहिबज़ादे इतनी निडरता से लड़ते हुए अपने धर्म पर न्यौछावर हो गए।

जब दोनों छोटे साहिबज़ादों को सूबा सरहिंद के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो दोनों ने बड़ी शान से सिर ऊंचा करके फ़तहि गजाई। उनसे वहां कई प्रश्न पूछे गए और पांच व सात साल के इन बच्चों ने जो जवाब दिए उन्होंने केवल सरहिंद के दरबार को ही नहीं, हर सुनने वाले व्यक्ति को दांतों तले उंगलियां दबाने को विवश कर दिया। जब यह प्रश्न पूछा गया कि यदि तुम्हें छोड़ दिया जाए तो क्या करोगे, उस समय साहिबज़ादा ज़ोरावर सिंघ ने कहा, "यदि हमें छोड़ दिया जाता है तो हम जंगल में जाएंगे, सिक्खों को इकट्ठा करेंगे और अत्याचारी मुगल साम्राज्य से युद्ध करेंगे।" वे जानते थे कि ऐसा उत्तर उन्हें सीधे उनकी मृत्यु की ओर ले जाएगा फिर भी उन्होंने सच्चाई को बड़ी निडरता से प्रस्तुत किया। इतिहास गवाह है कि इसके बाद उन पर कितने ज़ुल्म ढाए गए, कितनी यातनाएं दी गईं, पर कलगीधर पिता के लखते-ज़िगर बेखौफ होकर मृत्यु को भी पराजित कर गए।

सिक्ख घर-परिवार के बच्चों में बचपन से ही ऐसी निडरता भरने की आवश्यकता है, क्योंकि एक बात तो सर्वविदित है कि सिक्खों के लिए हर समय कोई न कोई चुनौती या संघर्ष खड़ा ही रहता है। ऐसी स्थिति में हमारी कौम के हर सदस्य की निडरता ही हमें मज़बूती से एकजुट रखेगी। प्रश्न यह भी है कि साहिबज़ादों में इतनी छोटी आयु में यह निडरता आई कैसे? इसका उत्तर भी श्री गुरु अरजन देव जी की बाणी में स्वयं मिल जाता है :

जा कउ हरि रंगु लागो इसु जुग महि सो कहीअत है सूरा ॥ *(पन्ना ६७९)*

गुरबाणी की समझ ही हमारे बच्चों में दृढ़ता उत्पन्न करेगी, जो धीरे-धीरे निडरता बनती जाएगी। हां, एक बात का ध्यान माता-

पिता को रखना होगा कि वे अपने बच्चों को निडरता और उद्दंडता का भेद अवश्य सिखाएं। निडर बच्चे सचमुच ही सिक्ख कौम के असली वारिस होंगे, जिनके हाथों भविष्य सौंपकर हम भी निश्चिंत हो सकेंगे।

बुद्धि-कौशल और कर्त्तव्यनिष्ठा : दुश्मन का सामना करने के लिए केवल शारीरिक बल ही नहीं बुद्धि बल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। चमकौर की जंग में दोनों साहिबज़ादों द्वारा दिखाया गया रण-कौशल बाहुबल और शस्त्रों के प्रशिक्षण की उच्चता को तो दर्शाता ही है साथ ही इतने घमासान को चीरते हुए अंदर घुसना और घंटों अकेले दुश्मनों से लड़ते हुए उन्हें गढ़ी से दूर रखना उनकी बुद्धिमत्ता और सजगता की चरमता को भी दर्शाता है। छोटे साहिबज़ादों ने इस बुद्धि-कौशल का कदम-कदम पर प्रदर्शन किया। जब उन्हें बड़े दरवाजे की बजाए छोटे से द्वार के समक्ष लाया गया तो उन्होंने अपनी परिपक्व बुद्धि का परिचय दिया। वे तुरंत समझ गए कि यह हमारे साथ-साथ सिक्ख कौम को भी झुकाने की साज़िश है, इसलिए सिर झुकाकर प्रवेश करने के स्थान पर उन्होंने पैर आगे करके प्रवेश किया। उन्हें कई बार झूठ कहा गया कि तुम्हारे पिता और बड़े भाई या तो बंदी बना लिए गए हैं या मार दिए गए हैं, पर हर बार उन्होंने अपने बुद्धि-कौशल द्वारा सूबा सरहिंद की इन बातों को झूठा साबित कर दिया। इतिहास में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि दोनों भाइयों को अलग करके यह कहा गया कि दूसरे ने इसलाम स्वीकार कर लिया है, पर दोनों ने ही इस बात को नहीं माना।

अपनी युवा और बाल पीढ़ी के बुद्धि-कौशल पर हमें संदेह नहीं है। अपनी बुद्धिमता के बल पर ही हमारी युवा पीढ़ी आज भौतिक संसार में इतनी उन्नत है। यदि हम उन्हें धार्मिक क्षेत्र में भी अपनी बुद्धिमता के प्रयोग के लिए सक्षम बना दें तो निश्चय ही वे सिक्ख विरोधी ताकतों की किसी चाल में नहीं फंसेंगे। न ही वे उन ताकतों द्वारा सिक्ख इतिहास के विरुद्ध किए जा रहे कुप्रचार से भ्रमित होंगे; न ही निरर्थक लचर कल्चर की ओर लुभायमान होंगे और न ही नशाखोरी या पतितपुने में अपना जीवन नष्ट करेंगे। अगर हम अपने बच्चों को धर्म के प्रति जिम्मेदार और जागरूक बना सकें तो वाकई हमें भविष्य के लिए चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

स्वाभिमान : न केवल साहिबज़ादों का वरन् हर सिक्ख का जीवन स्वाभिमानी है। चारों साहिबज़ादे इसीलिए इतनी कठोर यातनाएं और संघर्ष के सामने डटकर खड़े हो सके, क्योंकि वे हृदय-तल से जानते थे कि उनका मार्ग सही है और किसी को भी अपने धर्म के प्रति स्वतंत्र विचारधारा रखने का पूर्ण अधिकार है। इसी सिद्धांत के लिए श्री गुरु तेग बहादर साहिब ने हिंदू धर्म की रक्षा करते हुए लासानी शहादत दी थी। साहिबज़ादे भी अपने दादा जी की भांति उसी ज़ालिम सलतनत से जूझ रहे थे। बेशक ये पंक्तियां किसी कवि की रचना हैं जो छोटे साहिबज़ादों की ओर से सूबा सरहिंद को दिए गए जवाब के रूप में रची गई हैं, पर इनमें भी इन बच्चों का स्वाभिमानी व्यवहार स्पष्ट झलकता है जब वे कहते हैं :

दीन कबूलन असीं ना आए, दीन कबूलन खोते।
सीस दित्ता जिन दिल्ली जा के, असीं उस दादे दे पोते।

अगर हमारे बच्चे अपने धर्म से पूरी तरह वाकिफ़ होंगे तो वे अवश्य ही स्वाभिमानी बनेंगे। ऐसे स्वाभिमानी बच्चे सिक्खी के अमूल्य रत्न को नशाखोरी, पतितपुने और भ्रम के सामने कौड़ियों के मोल नहीं बेचेंगे।

सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त : सिक्ख जीवन-शैली भौतिक सुख-सुविधाओं को नकारती नहीं है। यह स्वाभाविक मानवीय आवश्यकता है। सारा जीवन केवल इन सुख-सुविधाओं में खचित रहना भी सही नहीं है। साहिबज़ादों को बचपन से ही बहुत अच्छा पालन-पोषण मिला था। किसी सुख-सुविधा या साधन की कमी नहीं थी उन्हें, पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि उन्होंने आध्यात्मिक जीवन को भौतिक जीवन से अधिक महत्त्व दिया। जिस उम्र में हमारे बच्चे जवानी की दहलीज़ पर कदम रखते हैं वह उम्र जीवन का सबसे खूबसूरत वक्त होता है, कितने ही सपने उनकी आंखों में तैरते हैं। हर काम के लिए उनमें जोश और उत्साह होता है। बस, यदि इस पड़ाव पर हम उनके उत्साह को सिक्खी रंग दे दें तो आने वाला भविष्य उनके हाथों में सुरक्षित होगा। इसी आयु में दोनों बड़े साहिबज़ादों ने अपने कर्त्तव्य को अपने सपनों से ऊपर तरजीह दी। जिस उम्र में उन्हें घोड़ी पर चढ़कर अपनी दुल्हन को लाने के लिए जाना चाहिए था, उसी आयु में उन्होंने घोड़ों पर चढ़कर, शस्त्रों का शृंगार कर दुल्हन-मौत का वरण किया।

छोटे साहिबज़ादों को इसलाम कबूलवाने के लिए सूबा सरहिंद की ओर से कितने लालच दिए गए; नवाबियां, रियासतें और शहज़ादियों तक के प्रलोभन दिए गए, पर धन्य हैं ये वीर बालक जिन्होंने धर्म का पालन करते हुए सभी को ठुकराया और इतनी कठोर यातनाओं का मार्ग चुना। जिस उम्र में हमारे बच्चे एक चॉकलेट के लालच में कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं उसी उम्र में साहिबज़ादों ने बला के नज़रानों को छोड़कर मौत को गले लगाया। ऐसा महान आदर्श तो केवल बच्चों के लिए ही नहीं हर आयु के सिक्ख के लिए प्रेरणा का स्रोत है। अपने बच्चों को सारी सुविधाएं देते समय हमारा यह फर्ज़ है कि हम उन्हें उनमें खचित होने से बचाएं, गुरमति जीवन-शैली सिखाएं।

भाणे को रज़ा करके स्वीकारना : भाणा मानना सिक्ख जीवन-शैली का अभिन्न अंग है, पर प्रसन्नचित्त होकर किसी भाणे के आगे सिर झुकाना किसी विरले गुरसिक्ख का ही काम है। चारों साहिबज़ादों ने विकट से विकट परिस्थिति में न तो किसी से शिकायत की और न ही अपने मन में ज़रा सा म्लान आने दिया। अपने दादा के दादा और शहीद शिरोमणि श्री गुरु अरजन देव जी के अनमोल वचन : *"दइआ करहु नानकु गुण गावै मिठा लगै तेरा भाणा ॥"* का उन्होंने अंतिम श्वास तक निर्वाह किया।

यह हमारा और हमारे बच्चों दोनों का ही कर्त्तव्य है कि सिक्खी मार्ग में आने वाले समकालीन संघर्षों को सिर-माथे स्वीकारें।

जहां अपने बच्चों में उपरोक्त गुणों को निरूपित करने हेतु पारिवारिक माहौल की आवश्यकता है वहीं पंथक तौर पर भी हमें सरल व सक्षम उपाय करने होंगे। गुरुद्वारे सिक्ख जीवन-शैली का प्रमुख प्रशिक्षण-केंद्र हैं। श्री गुरु रामदास जी का फरमान है : *"सतिसंगति सतिगुर चटसाल है जितु हरि गुण सिखा ॥"*

गुरुद्वारों में कथा-कीर्तन के अतिरिक्त बच्चों के लिए कुछ विशेष उपक्रम भी किए जाने आवश्यक हैं। मुंबई के सभी प्रमुख गुरुद्वारा साहिबान में गर्मी की छुट्टियों में गुरमुखी और गुरमति प्रशिक्षण की कलासें लगाई जाती हैं। पिछले कई वर्षों से मैं भी ऐसी कलासें लेती रही हूं। यहां विशेष रूप से बच्चों को अपने ५०० साल से अधिक पुराने इतिहास से अवगत कराया जाता है। कई सालों के परिश्रम के बाद यहां नतीजा स्पष्ट है, जो बच्चे बचपन से लगभग हर साल क्लास में आते रहे थे, आज युवावस्था

में वे साबत सूरत भी हैं और नशों से दूर भी। दूसरी बात, गुरुद्वारा साहिबान में बच्चों के लिए समय-समय पर सिक्खी से संबंधित स्पर्धाएं आयोजित की जाएं तो भी अवश्य लाभ होगा, जैसे गुरबाणी और सिक्ख इतिहास पर आधारित सामान्य ज्ञान स्पर्धा, दसतारबंदी मुकाबले या गतका मुकाबले आदि। ये काफी हद तक हमारे बच्चों को जागरूक रखने में सहायक होंगे।

फिर हमें आधुनिक संचार माध्यमों का प्रयोग भी खुलकर करना चाहिए। आज मोबाइल और इंटरनेट के जमाने में इन्हीं के माध्यम से बच्चों को अपने विरसे से जोड़ने में बहुत सहायता मिली है। बड़े शहरों में ऐसा हो भी रहा है। साथ ही धार्मिक पत्रिकाएं भी यदि बच्चों के दृष्टिकोण से एकाध लेख या प्रश्नोत्तर डाल सकें तो वह भी कारगर है। पंजाब से बाहर बसने वाले सिक्ख बच्चे गुरमुखी लिपि के क्षेत्र में कुछ पीछे हैं। यदि हम पत्र-पत्रिकाओं में हर बार या विशेष अवसरों पर बच्चों के लिए एकाध सचित्र साखी डाल सकें या अंग्रेजी में सिक्ख इतिहास की एकाध कथा छापें तो यह भी बच्चों में जागरूकता लाने में सहायक सिद्ध होगा।

साहिबज़ादों को आदर्श बनाकर हम वर्तमान पीढ़ी में फिर से जोश और उत्साह ला सकते हैं। साहिबज़ादों ने धर्मांधता के विरुद्ध संघर्ष किया। आज की पीढ़ी को गुरबाणी और गुर इतिहास की छत्र-छाया में नशाखोरी और पतितपुने से संघर्ष करना है। याद रखिए, कलगीधर पिता ने समूची कौम को अपने साहिबज़ादों के समकक्ष सम्मान देते हुए कहा था :

इन पुत्रन के सीस पर वार दिए सुत चार।
चार मुए तो किआ भया जीव कई हजार।

जब साहिबज़ादों ने हिम्मत नहीं हारी तो हम कैसे हिम्मत हार सकते हैं? कवि निराला जी ने भी साहिबज़ादों का वास्ता देते हुए सिक्ख कौम से कहा था :

तुम्हारी पद रज भर भी नहीं है,
सारा यह विश्व भार,
जागो फिर एक बार!



कविता

वे फर्ज़ के पाबंद थे

वे फर्ज़ के पाबंद थे।
स्वप्नशील, विचारधारी,
बड़े ही अक्लमंद थे।
जो इतिहास ने सौंपा उन्हें,
उसके बड़े पाबंद थे।
वो अपने 'अजीत' थे,
वो अपने 'जुझार' थे,
जोरावर-फ़तहि सिंघ थे,
जो बड़े हकीकतवंद थे।
चढ़दी कला की वार थे,
चढ़दी कला के चंद थे।
डर जाने का न पता था,
आगे ही आगे जाना
बहुत दृष्टि बुलंद थे।
कुर्बान हो जाना
मानवता के मूल्यों को बचाना
अपने मन ही मन
सत्यचित्त आनंद थे।
वे फर्ज़ के पाबंद थे।
कुर्बानी के लिए रज़ामंद थे।



-डॉ. सुरिंदरपाल सिंघ, पत्तण वाली सड़क, पुराना शाला, गुरदासपुर-१४३५२१, मो. ९४१७१-७५८४६

हमारे बच्चे धर्म और धार्मिक शिक्षा से दूर क्यों जा रहे हैं?

*-डॉ. जगजीत कौर**

बच्चे अकाल पुरख वाहिगुरु की इस सुंदर कुदरत, इस सुंदर रचना-प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वाहिगुरु ने यह जो *"कीता पसाउ एको कवाउ"* में *"आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ॥ दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ॥"* द्वारा विस्मादजनक नाना रूपात्मक सृष्टि की सृजना की है, इसका एक खूबसूरत हिस्सा, प्यारे-प्यारे, हंसते-मुस्कराते, नन्हे, अबोध बालक मानव समाज का अनिवार्य अंग हैं। मानव जाति का मूल बाल-रूप ही है, इसलिए तो प्रसिद्ध अंग्रेज कवि वर्डस्वर्थ ने कहा है कि बच्चे में एक पिता की अनुकृति होती है। (**Child is father of the man.**) हमारे बच्चे ही हमारा कल का भविष्य हैं। बच्चे हमारी कौम का सरमाया हैं। इन बच्चों में ही साहिबज़ादा अजीत सिंघ, साहिबज़ादा जुझार सिंघ, साहिबज़ादा जोरावर सिंघ और साहिबज़ादा फ़तहि सिंघ की स्प्रिट उभरकर आएगी। इन्हीं बच्चों में से ही पंथक मूल्यों की रक्षा हेतु कुर्बानियां देने वाले, धर्मरक्षक अनेकों सिंघ-सिंघणियां, शहीद, वीर योद्धा तैयार होकर आएंगे, जिनके हृदयबेधी कारनामे, पंथ की आन-शान बनेंगे, जिनसे पंथ-निर्माण और समाज विकास के नये इतिहास में स्वर्णिम पन्ने अंकित किए जायेंगे। पंथ इन पर गर्व करेगा, फख्र करेगा, असीम संतोष प्रकट करेगा। गुरमति के प्रकाश-स्तंभ में अपना मार्ग निश्चित करते हुए हमारी आज की नई पनीरी तकनीकी युग की समस्त प्रोफेशनल खूबियों, समस्त सक्षमताओं, कला-कुशलताओं से सम्पन्न हो अपने धर्म एवं इतिहास से भी प्रेरित होनी चाहिए।

पर यह सपना तभी साकार होगा जब हम इन बच्चों के संरक्षक अपना दायित्व ईमानदारी से निभायेंगे। बच्चे जहां हमारे घरों की रौनक हैं, वहीं ये हमारी जिम्मेदारी भी हैं। इन्हें आज्ञाकारी बनाना, इनके सुंदर, स्वस्थ, संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करना, इनके सुखद भविष्य की रूप-रेखा तैयार करना, इन्हें ऐसी मर्यादित लकीरों पर चलाना, जिससे न तो इन्हें कभी जीवन में हीनताबोध हो और न हम अभिभावकों को कभी शर्मिंदगी से सिर नीचा कर चलना पड़े, यह हमारी अहम जिम्मेदारी बनती है।

क्या हम इस दायित्वबोध का पूर्ण निर्वाह कर पायेंगे? फिलहाल तो समाज की जो निराशाजनक तस्वीर हमारे सामने आ रही है उससे तो अति गंभीर, भावचेत्ता, संवेदनशील, अति ईमानदार, गुरु को समर्पित सिक्ख का मन निराशा में डोलने लगता है। आए दिन अख़बारों की सुर्खियां, मीडिया के समाचार, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तस्वीरें बाल अपराधों के एक से एक जघन्य चित्रों से पूरित होती हैं। छोटे-छोटे बालक, तीन से दस साल की आयु के बालक, जिन्हें अभी अबोध क्रीड़ाओं, परी जगत की कोमल कल्पना-युक्त कथा-कहानियों से आनंद उठाने की, नानी-दादी मां से किस्से-कहानियां सुन उनकी गोद का दिव्य सुख भोगने की रुचि

****1801-C, Mission Compound, Near St. Mary's Academy, Saharanpur (U.P.)-247001, Mob. : 94124-80266***

होनी चाहिए थी, उन्हीं में से कोई एक हाथ में बंदूक लेकर, कहीं स्कूल की कक्षा में प्रवेश कर, अपनी टीचर सहित अन्य सहपाठियों पर दनादन गोलियां दाग उन्हें मौत के घाट उतार रहा है, कहीं कोई दो-चार सिरफिरे हमसाथियों को ले तीन साल की अबोध बालिका से घिनौने कर्म कर रहा है, कोई कहीं सिनेमा हाल में घुस भयानक नरसंहार कर रहा है; चोरी, डकैती, मार-पीट, अपने ही माता-पिता, बुजुर्ग दादा-दादी की हत्या और कहीं निराशा में अपनी ही आत्म-हत्या, क्यों हो रहा है समाज का यह अध: पतन?

स्पष्ट है कि हम अभिभावक, संरक्षक, हमारा चतुर्दिक वातावरण, हमारी शिक्षा-प्रणाली, हमारी जीवन-शैली उस लकीर से हटकर चल रही है, जो जीवन-मूल्य, जीवन के जो दिव्य नैतिक गुण हमारे महापुरुषों ने, गुरु साहिबान ने, हमारे धर्म-ग्रंथों ने, वर्षों की कठिन साधना साधकर, अपने महत जीवन को दांव पर लगाकर, अनेकों कष्ट सहन कर, कुर्बानियां देकर, समग्र मानव-कल्याण के लिए, मनुष्यता की सुखद, शांतिपूर्ण व सहज जीवनधारा से युक्त आदर्श हमारे लिए कायम किए थे और हमें अपने फर्जों, अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक कर 'धर्म' की रूप-रेखा में मर्यादित किया था।

हमारे गुरु साहिबान, हमारे चिंतकों, विचारकों, मनस्वियों ने हमें धर्म की सीमा में रहना सिखाया। 'धर्म' क्या है? 'धर्म' संस्कृत के 'धृ' धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ है धारण करना। महान कोश कृत भाई कान्ह सिंघ नाभा के अनुसार, जो विश्व को धारण करता है अर्थात् विश्व जिसके सहारे टिका है, वह 'धर्म' है। साधु, गुरु की संगत में धर्म को दृढ़ता प्राप्त होती है। बड़े भाग्य से 'धर्म' की प्राप्ति होती है : *"संत का मारगु धरम की पउड़ी को वडभागी पाए ॥"* मनुष्य का पावन शरीर धर्म-चिंतन के लिए ही बना है : *"एह सरीर सभ धरम है जिस अंदरि सचे की विच जोत ॥"* 'धर्म' का ही दूसरा नाम कर्त्तव्यबोध है। अपने फर्ज़ों को पूरा करना, दायित्व का निर्वाह ईमानदारी से करना 'धर्म' है। धर्म के अंग भी बताए गए हैं। गुरु नानक पातशाह जी ने जपु जी साहिब में निर्देश दिया है : *"धौलु धरमु दइआ का पूतु ॥ संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति ॥"* 'धर्म' की उत्पत्ति दया से होती है। जीव मात्र के प्रति दया, सहानुभूति की भावना, लोभ-लालसा, मैं-मेरी की भावना से दूर थोड़े में ही सुख मानकर संतोष से जीवन-यापन करना, दूसरे के साधनों पर अनाधिकार, अधिपत्य न जमाने की भावना अर्थात् त्याग-वृत्ति के साथ जीना, जो समदृष्टि का मूल है, वास्तव में 'धर्म' है।

इन महत मूल्यों को न तो हमने अपने जीवन में धारण किया और न ही अपने बच्चों के लिए हम रोल मॉडल बन सके, इसीलिए हमारे बच्चे धर्म के नाम से बिदकते हैं। धार्मिक शिक्षा, पहले तो इसका कोई ठोस रूप ही हमने निश्चित नहीं किया और यदि समाज के कुछ समर्पित प्राणी या संस्थाएं प्रयत्न कर भी रही हैं तो हमारे बच्चे और विशेषकर युवा पीढ़ी इससे दूर ही भागती है। दरअसल बालक के विकास में तीन तत्त्वों की अहम भूमिका होती है : १. माता-पिता, परिवार, २. अध्यापक, शिक्षा-प्रणाली, ३. चतुर्दिक वातावरण। अब देखना यह है कि ये तीनों तत्त्व नई पीढ़ी की धार्मिक रुचियों के विकास में कितना योगदान दे रहे हैं।

बालक की प्रथम पाठशाला घर होता है। उसकी प्रथम अध्यापिका उसकी मां होती है। अंग्रेजी की कहावत **'Courtesy begins at**

home' के मुताबिक माता-पिता, घर-परिवार के अन्य सदस्य बालक का चरित्र-निर्माण करने में सहायक होते हैं। अब पहली बात तो यह है कि दादा-दादी, नाना-नानी तथा अन्य संबंधों की तो लगभग आज के टूटते परिवारों और बिखरते संबंधों में कोई अहम भूमिका ही नहीं रही है। अधिकांश परिवार माता-पिता और बालक-बालिकाओं तक ही सीमित हैं। ऐसे सीमित परिवार में माता-पिता का मुख्य उद्देश्य घर की पदार्थगत उन्नति करना है। इसके लिए अधिकांशत: माता-पिता दोनों कमाते हैं। धन कमाने की इस व्यस्त दिनचर्या में उनके पास समय ही नहीं है कि वे बच्चे को अपने निकट बैठाकर आराम से धर्म संबंधी कुछ नित्य क्रियाओं से जोड़ सकें। नित्य की दिनचर्या के साथ प्रभु-बंदगी, पाठ-पूजा, सेवा-कार्य, दैवी गुणों की पहचान करना तथा उन पर चर्चा करना, धर्म के प्रति लगाव, हर कार्य प्रभु-नाम लेकर या अरदास करके शुरू करना, सफलता के समय परमात्मा का धन्यवाद करना आदि तमाम बातें हैं जो पहले अभिभावकों, फिर बच्चों में प्रकट होनी चाहिए। धन कमाने में व्यस्त कई माता-पिता बच्चों को बोर्डिंग स्कूलों में भर्ती करते हैं और यहां तक पढ़ने-सुनने को मिला है कि वे छुट्टियों में भी बच्चों को घर के माहौल में नहीं लाना चाहते, क्योंकि उनके पास बच्चों की देखभाल करने का समय ही नहीं है। यहां तक भी कुछ स्कूलों का अनुभव रहा है कि यदि किसी माता-पिता के दो बच्चे बोर्डिंग में हैं तो उनकी कोशिश यह रहती है कि एक बच्चा छुट्टियों में ही घर आए और दूसरा नहीं, क्योंकि दो बच्चों को संभालने का समय उनके पास नहीं है। इससे वे बच्चों के सहज विकास में बाधक बनते हैं। दो बच्चों के आपस में खेलने-कूदने, लड़ने-झगड़ने, रूठने-मानने की सहज मनोवृत्ति से जो गुण उनमें पैदा होते हैं, उन पर वे अंकुश लगा देते हैं। पास बैठाकर बच्चों को महापुरुषों की जीवनियां सुनाई जाएं, जिससे उसमें सहज, दया, ममता, त्याग-वृत्ति, आपस में मिल-बांटकर खाने की उदार-वृत्ति पनप सके। धर्म में ऐसी उदात्त वृत्तियां अंतर्निहित रहती हैं जो हमें एक अच्छा स्वस्थमना नागरिक बनाती हैं, हम में सेवा, परोपकार, त्याग जैसे महान गुण भरती हैं। आज के अधिकतर माता-पिता अपने ही स्वार्थवश बच्चे के आत्मिक विकास की दिशा में कोई प्रयत्न न कर उसका भारी भरकम नुकसान कर रहे हैं। दूसरा कारण यह भी है कि आज कई माता-पिता का लक्ष्य केवल बालक को प्रोफेशनल उन्नति की ओर ले जाना है। वे बच्चे को डॉक्टर, इंजीनियर या अन्य उच्च पदाधिकारी बनने का सपना देखते हैं और अपनी सारी शक्ति इसी दिशा में लगा रहे हैं। आगे चलकर बच्चे को समाज में विचरण करना है। परस्पर के बर्ताव में सहानुभूति, दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होने के साथ-साथ सहनशीलता, उदारता, दया, ममता, समानता जैसे उदार गुण ही उसे एक अच्छा नागरिक बनाएंगे, जिसकी शिक्षा उसे केवल धार्मिक विचारों से ही मिल सकती है। आज के माता-पिता बालक का एकांगी विकास कर रहे हैं। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास न करके बल्कि वे उसे ऐसे कम्पीटीटिव माहौल में पाल रहे हैं, जहां वह अन्य साथियों से आगे बढ़ने की होड़ में तो स्पर्धागत होता ही है, स्वयं अपने भाई-बहनों से भी ईर्ष्या और जलन करने लगता है। एक ही घर में अगर तीन बच्चे हैं तो तीनों में होड़ लगी होती है कि आगे कौन निकलता है। यह भावना आपसी क्लेश, द्वेष, ईर्ष्या को जन्म दे रही है। आए दिन बहन-

भाइयों में आपसी प्रेम-भावना के अभाव और अन्य संहारक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। परिवार में माता-पिता प्रेम-प्यार का वातावरण बनाएं, धर्म के उदार भावों से बालकों को जोड़ें; बालकों का सहज भाव से विकास हो, उनमें विद्रोही भावना न पनपे; वे शांत, हंसमुख दूसरों के लिए कुछ कर गुजरने की भावना से अनुप्रेरित हों। ऐसा माहौल केवल माता-पिता ही परिवार में बना सकते हैं। धर्म और आत्म-ज्ञान की उदार शिक्षा मां ही बालक को दे सकती है। महान गुरु-महिलों, गुरु-माताओं, बहनों, पुत्रियों और पंथहित जीवन-दान देने वाली सिंघणियों के उदाहरण हमारे सामने हैं। आज की माता अपने विरसे को भूल गई है, इसलिए आज हमारे बालक धर्म की बात ही नहीं सुनना चाहते। प्रसिद्ध साहित्यकार रस्किन कहता है-- **"My mother caned the Bible in my skin."** (मुझे बाइबिल की शिक्षा मेरी मां ने दी।) क्या आज की माता अपने बच्चों को धर्म, धर्म-सिद्धांतों आदि की शिक्षा दे रही है?

घर-परिवार में बच्चों के उठते-बैठते, उन्हें प्यार की लोरियां सुनाते, उसके मुंह में भोजन का निवाला डालते मां धार्मिक साखियां, धर्म-ग्रंथों के उपदेश बता सकती है, जो सहज ही उसमें दिव्य गुणों का विकास करते हैं। यह अनौपचारिक शिक्षा है। दूसरा पक्ष है औपचारिक शिक्षा, जो बच्चों के स्कूल और आगे चलकर कॉलेज, यूनीवर्सिटीज़ आदि से मिलती है। इस औपचारिक शिक्षा का लक्ष्य है-- समाज में ऐसे सभ्य नागरिक तैयार करना जो प्रत्येक परिस्थिति के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकें। उनमें दूसरे के विचारों के प्रति सहनशीलता हो, वे परस्पर भ्रातृ-भाव की डोर में बंधे एक दूसरे के सहायक हों तथा समाज में परस्पर प्रेम सौहार्द और सहानुभूति का माहौल कायम कर सकें। क्या हमारे शिक्षण संस्थान ऐसा कर रहे हैं? बच्चे अपने कद और वज़न से भी ज्यादा भारी बस्ते तो पीठ पर लादे घूम रहे हैं, परंतु क्या पुस्तकों का यह भार उन्हें नैतिक जीवन-मूल्यों से जुड़ा एक अच्छा इंसान बना रहा है। हमारे शिक्षण संस्थान, हमारे पाठ्यक्रम-सिलेबस में क्या कहीं नैतिक शिक्षा या उच्च जीवन-मूल्यों से जुड़ी शिक्षा का कोई स्थान है? हमारी शिक्षण-प्रणाली का पूरा ज़ोर इस बात पर है कि हम समाज में अधिक से अधिक डॉक्टर, इंजीनीयर, वकील, स्नातकोत्तर टीचर, व्यवसायिक वर्ग तैयार कर सकें। क्या हमने इस ओर भी सोचा है कि हमें भावनाओं से जुड़े कोमल हृदय वाले मानवों की भी जरूरत है? प्रकृति की देन इस सुंदर सृष्टि को आगे बढ़ाने के लिए और इसका वातावरण सुखदायी बनाने के लिए अभी हाल ही में एक सेमिनार में एक अत्यंत विचारशील विद्वान को यह कहते सुना कि हमारे मानवीय संसाधन विकास संस्थान द्वारा मानवीय विकास के अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं, परंतु ये सभी प्रयत्न मानवीय संसाधनों के विकास में हो रहे हैं, मानव विकास के लिए नहीं। साइंस टेक्नोलॉजी एवं अन्य साधनों के विकास से हम अच्छे मनुष्य तैयार नहीं कर रहे। हम मशीनी मानव (**Robot**) और वह भी हृदयहीन तैयार कर रहे हैं, जिसमें किसी के प्रति सहयोग व दया-भावना नहीं है, जो केवल अपने स्वार्थ और अपनी कामयाबी के बारे में सोचता है। आज हमारी कामयाबी का मानदंड है : **'Nothing Succeds like Success.'** चाहे उसके लिए साधन कुछ भी अपनाने पड़ें। इसीलिए आज के कई डॉक्टर गांव में नहीं शहर में रहना चाहते हैं और ऐसे ही अधिकांश इंजीनीयर, टीचर,

वकील सभी ऐसे स्थानों की खोज में रहते हैं जहां अच्छी आय हो, अच्छा धन जुटाया जा सके; सेवा-भावना को ही उद्देश्य बनाने का सवाल कम ही दिखाई देता है। गुरु साहिब ने तो आदर्श दिया था कि एक अच्छा डॉक्टर *"वैदा वैद सु वैद है पहिला रोग पछाण ॥"* मरीज के ठीक होने पर प्रभु का धन्यवाद करना *"अउखध आए रासि विचि आपि खलोइआ ॥"* अध्यापक के लिए आदर्श रखा था : *"पाधा गुरमुखि आखीऐ चाटड़िआ मति देइ ॥"* जो बच्चों को धर्म की शिक्षा दे, आत्म-ज्ञान से जोड़े और बताए : *"विदिआ वीचारी तां परउपकारी ॥"* विद्या का अर्थ विचार-शक्ति को उन्नत करना है और जीवन को परोपकार में लगाना है। शिक्षा का आदर्श गुरमति के अनुसार कामर्शियल नहीं है, धन कमाना नहीं है : *"पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा ॥"* कुछ तो शिक्षण संस्थाओं का प्रबंध पैसे वाले, सियासत में अपनी शाख बनाए समर्थ लोगों के हाथ में है, जिन्हें ज्यादातर न तो अकादमिक कार्यों में रुचि होती है और न ही अधिक ज्ञान। ऐसे में कैसे संस्था का माहौल धर्मगत अभिरुचियों वाला बन सकता है? बहुत कम शिक्षण संस्थाएं हैं जिनमें धार्मिक शिक्षा का अच्छा कार्यक्रम चल रहा है। इस विषय के लिए उचित तनख्वाह पर धार्मिक शिक्षा में निपुण अध्यापकों की नियुक्ति हो, जो बाकायदा रुटीन में धार्मिक शिक्षा का ज्ञान दें। सिक्खों की कई शिक्षण संस्थाओं में गुरमति शिक्षा की बात तो दूर उनमें तो पंजाबी भाषा का उचित शिक्षण ही नहीं है। कुछ भाग्यशाली संस्थान गुरु-कृपा से ऐसे चल रहे हैं जो धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में अपना नाम रखते हैं मगर राष्ट्रीय स्तर पर बहुत कम हैं। जब मातृ-भाषा ही अपनी नहीं होगी तो बच्चे तो अंग्रेजी और पाश्चात्य संस्कृति में 'हैलो', 'हाय', 'गुडमॉर्निंग' से ही दिन की शुरूआत करते हैं।

अब थोड़ा महौल पर विचार कर लें। हाल ही में एक संभ्रांत धार्मिक रुचियों वाले शिक्षक से बात हो रही थी तो अत्यंत उदासी में डूबे उन्होंने बताया कि कक्षा में बच्चे मूल रूप से दया, धर्म, सत्यवादिता की कहानियां, साखियां सुनकर प्रसन्न होते हैं। यह स्वाभाविक गुण है। हमें उनमें यह गुण पनपने का माहौल देना चाहिए।

आज चारों ओर काली कमाई, बेईमानी का बोलबाला होता जा रहा है। ऐसे में बच्चों को इन दुष्वृत्तियों से बचाए रखने का मात्र एक साधन धार्मिक शिक्षा ही है। दया, धर्म, ईमानदारी, मेहनत की कमाई में उनकी आस्था को यथासंभव बनाए रखना चाहिए।

मीडिया द्वारा बच्चों को आए दिन मारधाड़, लूटपाट, आगजनी के किस्से, ड्रग्स, स्मगलिंग आदि सामाजिक घटनाओं का ज़िक्र हमारे टी.वी., अख़बार और अन्य साधकों द्वारा मिल रहा है। फिल्मी जगत की ग्लैमरस जीवन-शैली, उनके जैसे ही किड्स के डांस गानों के कार्यक्रम क्या इन सबके मध्य ऐसा कुछ है जो बच्चों को धर्म और नैतिकता से जोड़ सके? अधिकांश माता-पिता स्वयं बच्चों को इस दिशा में प्रेरित कर रहे हैं। बच्चों को गुरुद्वारे ले जाना, गुरबाणी-कीर्तन से जोड़ना, गुरमति प्रोग्रामों, कम्पीटीशनों में भाग लेना, गुरमति कार्यों से जोड़ना, सेवा, दया, परोपकार कार्यों से जोड़ना, उन्हें 'समय की बर्बादी' लगती है। कई बार स्कूलों-कॉलेजों की ओर से समाज-सेवा के कैंप लगते हैं, कितने माता-पिता हैं जो उन्हें समाजसेवी कार्यों में भाग लेने देते हैं? माता-पिता बच्चों को उत्साहित नहीं करते, बल्कि उनके धार्मिक

विकास में अड़चन डालते हैं; उनकी अच्छाइयों को उभरने नहीं देते, बुराइयों पर पर्दा डालते है। बच्चा गलत रास्ते पर जा रहा है, माता-पिता छुपाने का प्रयास करते हैं। घर के बड़े बुजुर्गों को तो बोलने का अधिकार ही नहीं है। अफ्रीका की एक पुरानी कहावत है-- **"It takes a whole village to raise a child."** (एक बच्चे को बनाने में एक पूरे गांव की ताकत लगती है।) किंतु यहां ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे बच्चों की धर्म में रुचि जागृत हो, वे धर्म-शिक्षा के गुरमति कार्यों में प्रसन्नता से उत्साहपूर्ण भाग लें, तो समाज के प्रत्येक अंग, माता-पिता, शिक्षण-संस्थान, चारों ओर का माहौल, सब को मिलकर एक साथ संतुलित प्रयास करने होंगे। सबके सहयोग से बच्चों की मानसिकता सकारात्मक बनानी होगी, जिसमें वे धर्म-प्रसूत उच्च गुणों को मूल्य प्रदान कर सकें। उनमें धैर्य की भावना, दया-भावना, आत्मविश्वास, न्याय-प्रियता, अन्याय से जूझने की शक्ति, सत्य-प्रियता, ईमानदारी जैसे उच्च गुण पनपें और वे स्त्री-पुरुष की समानता, नारी-सत्कार की भावना से समाज में पनपने वाली हर कुरीति का साहस से विरोध करें तथा यथार्थ में धर्म-पथ के अनुगामी हों। 

कविता

जो अपना धर्म और इतिहास भुला देते हैं

जो अपना धर्म और इतिहास भुला देते हैं,
वे अपना नाम और पहचान मिटा लेते हैं।
जो अपने आदर्श व उद्देश्य भुला देते हैं,
वे मंज़िल पाने का अवसर गंवा देते हैं।
अपने धर्म पर अटल रहने वाले लोग,
अपनी जान न्यौछावर कर देने वाले लोग,
नया इतिहास व समाज बना देते हैं।
कुर्बान होने का अंदाज़ सिखा देते हैं।
प्यारे बच्चो! अपने धर्म व इतिहास को जान लो,
सिक्खी की आन, बान और शान पहचान लो,
बच्चे भी धर्म हेतु बाज़ी जान की लगा देते हैं।
शहादतों में नवीन इतिहास बना देते हैं।
बाल-गुरु, गुरु हरिक्रिशन जी ने उपकार किया,
अपने हाथों से रोगियों का उपचार किया,
सुधबुध-विहीन छज्जू को ज्ञानी बना देते हैं।
अज्ञानियों को सच्चा ज्ञान-मार्ग दिखा देते हैं।
अजीत सिंघ, जुझार सिंघ नया इतिहास बना गए,
गढ़ी चमकौर में धर्म हेतु खून अपना बहा गए,
आओ, उन्हें हम अपना आदर्श बना लेते हैं!
जुल्म के खिलाफ़ हम भी तलवार उठा लेते हैं!
फ़तहि सिंघ, ज़ोरावर सिंघ का हौसला याद करो!
जुल्म के आगे न झुकने का फ़ैसला याद करो!
बुलंद हौसले, बुलंदियों पर पहुंचा देते हैं।
नन्हे योद्धा भी बड़े-बड़ों को जूझना सिखा देते हैं।
फ़ैशनप्रस्ती छोड़ दो, ऐशप्रस्ती छोड़ दो!
सदाचार अपना लो, विकारों की बस्ती छोड़ दो!
जो देश, धर्म हेतु अपनी हस्ती मिटा देते हैं।
वे देश, धर्म की हस्ती महान बना देते हैं।
जो बच्चे बड़ों की सेवा व सम्मान करते हैं,
जो बच्चे ऊंचे आदर्श-मार्ग पर चलते हैं,
वे बड़ों का प्यार तथा दुलार पा लेते हैं।
समाज में अपनी विशेष जगह बना लेते हैं।
जो अपना धर्म और इतिहास भुला देते हैं,
वे अपना नाम और पहचान मिटा लेते हैं। 

-डॉ. कशमीर सिंघ 'नूर', बी-एक्स ९२५, मोहल्ला संतोखपुरा, होशियारपुर रोड, जलंधर-१४४००४, मो. ९८७२२-५४९९०

कविताएं

महान दादी के महान पोते

एक मुद्दा है, जो मांगता है,
गहन सोच-विचार।
किधर जा रहा है हमारा समाज,
हमारा घर-परिवार?
किस कद्र बदल रहा है,
हमारा कल्चर, हमारा सभ्याचार?
बात करें सभ्याचार की तो
सभ्याचार में से 'सभ्य' निकल गया है
रह गया है सिर्फ 'आचार'।
और कल्चर का 'क' उड़ गया है,
रह गया है 'लचर'
इस लचर के सामने, हम सब हैं लाचार।
यही है आज का बड़ा सवाल,
जो मांगता है गहन सोच-विचार।
हमारे ज़माने की दादियां,
पोतों-पोतियों को अपनी गोद में बिठाकर,
खिलाती थीं, पिलाती थीं, सुलाती थीं
और उनको नैतिकता सिखाती थीं।
महापुरुषों की, शहीदों की, शूरवीरों की,
साखियां सुनाती थीं।
किस तरह बाबा दीप सिंघ,
धर्म की शान हेतु लड़े थे!
शाहबाज़ सिंघ, सुबेग सिंघ, चरखड़ियों पे चड़े थे।
और भाई तारू सिंघ ने
अपने केस न कटने दिए, खोपरी उतरवा ली।
शहीदी देकर अपने गुरु की, मुहर बचा ली।
ये आजकल की दादियां
ये भी बच्चों को अपनी गोद में
बिठाती हैं, खिलाती हैं, सुलाती हैं।
मगर गुरुओं की साखियां नहीं,
टी. वी. के सीरियल दिखाती हैं।
आज बच्चों को गुरुओं व शहीदों के नाम याद नहीं,
एक्टरों के नाम याद हैं।
गुरबाणी के शबद नहीं, फिल्मी गाने याद हैं।
जब बच्चा लचर गीतों की धुनों पर,
थिरकता है, नाचता है, घूमता है।
पूरा परिवार खुशी से झूमता है,
शाबाशी देता है, माथा चूमता है।
इस तरह बचपन जवानी की, सीढ़ियां चढ़ रहा है।
लचरपन और अनैतिकता की, पढ़ाई पढ़ रहा है।
सोचो, बड़ा होकर क्या करेगा?
जो कुछ टी. वी. में देखता है, वही कुछ करेगा।
एक दादी थी माता गुजरी,
जिसके सीने में था सिक्खी का प्यार,
कुर्बानी का जज़्बा, शहादतों का शौक।
जिसके 'सूरज' की रोशनी को,
बुझा न सका चांदनी का चौक।
जिसने दुनिया में बुलंद किया धर्म का झंडा।
जिसके जोश व जज़्बे को,
ठंडा बुर्ज भी न कर सका ठंडा।
ठंडी ऋतु में, ठंडी रात में, ठंडे बुर्ज में
वो अपने मासूम पोतों को
अपनी गोदी में सहलाती रही और सुनाती रही
दादे-पड़दादे की शहीदी का इतिहास।
भरती रही कुर्बानी का जज़्बा,
चढ़दी कला का एहसास।
कांप उठी कचहरी, कांप उठे दरो-दीवार।
जब वहां लाए गए, बब्बर शेर के दो बरखुरदार।
गूंज उठे जमीं-आसमान।
जब बाबा ज़ोरावर सिंघ और बाबा फ़तहि सिंघ
बोले होकर यकजुबान--
"वाहिगुरु जी का खालसा वाहिगुरु जी की फ़तह।"

-इंजी. करमजीत सिंघ 'नूर', ३/६१, गार्डन कालोनी, जलंधर-१४४००१, मो. ९८१५०-२३९७०

झूठा लगाकर फ़तवा,
मृत्यु का फरमान सुनाया गया।
दो अधखिले फूलों को, पत्थरों में दबाया गया।
दो मासूम ज़िंदगियों को, दीवार में चिनवाया गया।
मुरझा गए दो खुशनुमा गुंचे,
बुझ गए दो चमकते सितारे
हक-सच की खातिर कुर्बान हो गए
महान दादी के महान पोते
खुद मरकर भी हमें सिखला गए जीना
कर गए शहीदों में प्रवेश।
दे गए कौम को यह संदेश--
"चाहे कितना भी चले जुल्म का डंडा
जोश कभी न पड़े ठंडा
सदा ऊंचा रहे धर्म का झंडा।"
उनकी महान कुर्बानी को
मैं कर नहीं सकता बयान,
लड़खड़ाती है जुबान,
कलम रुकती, गला रुकता है।
पूरे संसार में ऊंचा किया जिसने
पूरी कौम का सर
'नूर' यह सर उस दादी के आगे झुकता है।
हमारा सर उस दादी के आगे झुकता है।

माता-पिता के संस्कार और बच्चे

अभिवादनशीलता और गुरु-सेवा से,
बच्चा चार पदार्थ पाता है।
आयु, विद्या, यश और बल से,
जीवन को चमकाता है।
आचारहीन हो रहे हैं बच्चे!
संस्कारहीन हो रहे हैं बच्चे!
शीलता और सदाचार भूल,
नशे से पीड़ित हो रहे हैं बच्चे!
खो चुके नैतिकता और धर्म,
दिशाहीन हो रहे हैं बच्चे!
रहित मर्यादा लुप्त हो गई,
कृतज्ञता खो रहे हैं बच्चे!
गुरुओं का उपदेश कहां है?
माता-पिता का परिवेश कहां है?
"सेवा-सिमरन से गुरगद्दी पाई"
गुरु ग्रंथ साहिब का उपदेश कहां है?
माता-पिता के संस्कारों से,
बच्चे महान बन जाते हैं।
त्याग, सेवा और बलिदान सीख,
इतिहास के पन्नों में छाते हैं।
'तिआग मल' ने करतारपुर युद्ध में,
'तेग' का जौहर दिखाया था।
तभी तो अपने पिता से उसने,
'तेग बहादर' नाम को पाया था।
अजीत सिंघ और जुझार सिंघ ने,
चमकौर युद्ध में जौहर दिखाया था।
धर्म की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते,
जीवन बलिदान चढ़ाया था।
छोटे साहिबज़ादे दशम गुरु के,
सरहिंद नवाब बुलाए गए।
धर्म की खातिर झुके नहीं,
दीवारों में चिनवाए गए।
साहिबज़ादों के बलिदान के पीछे,
माता-पिता के संस्कार खड़े थे।
तभी तो छोटी आयु में भी,
वे जुल्म के खिलाफ लड़े थे।
छोटा होता पीपल का बीज, मिट्टी में मिल जाता है।
ठंडी छाया देने को, खुद को खत्म कर जाता है।
यौवन जब आता है उस पर,
इतना बड़ा हो जाता है।
झंझावात-तूफानों को सह, छांव ठंडी-घनी पहुंचाता है।
त्याग और बलिदान के वृक्ष को,
ऐसे फल लग जायेंगे।
गुरबाणी के उपदेश 'दुखी', अमर तुम्हें कर जायेंगे।

-श्री सुरजीत दुखी, ३३२/९, गली जट्टां, अंदरून लाहौरी गेट, श्री अमृतसर-१४३००१, मो: ९९१४५३१२२१

घर-परिवार में बेटा-बेटी में अभी भी हो रहा है भेदभाव

*-स. सुरिंदर सिंघ निमाणा**

आज विश्व स्तर पर नारी की स्थिति काफी हद तक सही हो चुकी है, लेकिन अभी भी कई ऐसे पछड़े देश एवं समाज हैं, जिनमें नारी की स्थिति दयनीय बनी हुई है। हमारे अपने भारतवर्ष, जिसको हम 'महान' कहते नहीं थकते, इसमें भी नारी के साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक बहुप्रकारी भेदभाव होना अभी भी जारी है इन सबकी यहां पहचान करना हमारा मुख्य विषय नहीं है। यहां मात्र घर-परिवार के दायरे में बेटे-बेटी के पालन-पोषण तथा विद्या-प्राप्ति आदि के संदर्भ में किये जाने वाले अनेक तरह के भेदभावों में से केवल कुछ एक पर चर्चा किया जाना ही काफी है। वैसे भेदभाव तो हमारे भारतीय समाज में बेटी अथवा पुत्री के साथ बहुत पहले से ही होता आ रहा है, मगर अब तो इसको जन्म लेने की ही अनुमति नहीं दी जा रही। इसके विरोध में कानून बन जाने के बावजूद भी चोरी-छिपे यह घोर अपराध होना पूर्णत: बंद नहीं हुआ है। हमारे संवेदनशील सामाजिक कर्मी, समाज सेवक, कलाकार तथा साहित्यकार इस दिशा में जन-चेतना जगाने के जो अनेक तरह के प्रयास कर रहे हैं वे हार्दिक प्रशंसा के पात्र हैं। पंजाबी कवि-गीतकार स. गुरभजन सिंघ (गिल्ल) की काव्य-पंक्तियां स्मरण आ गई हैं :

मांए नीं! मेरी नानी दे घर,
तूं वी सैं कदे धी बण जंमी।
कुक्ख विच कतल करावण वाली,
किउं कीती तूं गल्ल निकंमी?
वीरा लब्भदी-लब्भदी हो गई,
किउं ममता तों कोरी?
नीं इक्क लोरी दे दे,
बाबल तों भावें चोरी!
नी इक लोरी दे दे!. . .

जो लोग लड़की की परवरिश में भेदभाव करते हैं वे अब भी भटके हुए हैं। पालना-परवरिश में भेदभाव करने वाले लोग माता-पिता बनकर भी इस महान रुतबे के रूपाकार से अनजान रहते हैं। बेटा-बेटी में फर्क वस्तुत: माता-पिता कर ही नहीं सकते, लेकिन यदि यह फर्क कहीं प्रकट हो भी रहा है तो इसकी पृष्ठभूमि में इर्द-गिर्द की गलत सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था ही काम कर रही दिखाई देती है। यह क्रूर व्यवस्था हमारे देश में चिरकाल से चलती आ रही है। यही भारतीय व्यवस्था है जो बेटी के जन्म लेते ही माता-पिता को उसके विवाह की चिंता करने में उलझा देती है। उन्हें उसके दहेज की फिक्र लगने लगती है। मां बेटी को एक बोझ, एक कर्ज़ मानने की हद तक ले जाती है, जिसके परिणामस्वरूप बेटी चाहे मां का अपना ही लघु रूप अथवा उसके शरीर, उसके अस्तित्व का ही एक अभिन्न हिस्सा होती है, फिर भी अनचाही गलत सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में वह अपने जिगर के टुकड़े को वो प्यार, लाड़, जो कुदरत ने उसके दिल में भरा हुआ है, बेटी को दे पाने में विफल रहती है। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में अभी भी बेटे के जन्म के समय और बेटी

*मुख्य संचालक, ऐवरगरीन साइंस एण्ड स्पोर्टस स्कूल, अच्चल साहिब, बटाला (गुरदासपुर)-१४३५०५, मो ८८७२७-३५१११

के जन्म के समय में एक जैसा दृश्य कम ही दिखाई देता है। बेटा जन्म ले तो परिवार में खुशी का माहौल बनता है। भले ही विद्या-पासार के फलस्वरूप पहले से अब इतना परिवर्तन तो है कि शोक नहीं मनाया जाता, लेकिन बेटी के जन्म पर बेटे के जन्म जैसी खुशी की तरंगें घर-परिवार रूपी दरिया में कम ही दिखाई देती हैं। वास्तव में यही मानसिक अवस्था है जो बेटी की पालना-परवरिश में फर्क डालने के लिए अपना काम करती है। जन्म लेते ही बेटे के लिए तो कितने ही सुंदर वस्त्र, खिलौने आदि आ जाते हैं परंतु बेटी के लिए वस्त्र और खिलौने खरीदने में भी कुछ न कुछ हद तक फर्क किया जाता है। यदि आज की नयी पीढ़ी माता-पिता बनकर इस भेदभाव को मिटाती नज़र आये तो संयुक्त परिवार में कोई न कोई सदस्य उनके इस अच्छे कर्म को सराहने की जगह उस पर कोई न कोई गलत टिप्पणी करता सुनाई दे जाता है।

बेटे-बेटी को खिलाने-पिलाने में कई घरों में अभी भी भेदभाव हो रहा है। आज से कुछ दशक पहले देहाती/ग्रामीण भारत में बेटों को अधिक से अधिक दूध, दही, घी, मलाई आदि उपलब्ध कराए जाते थे, लेकिन बेटी को इनसे वंचित रखा जाता था। आज यह व्यवहार इतना व्यापक इसलिए नहीं चूंकि दूध, दही, घी, मलाई आदि खाद्य पदार्थों के प्रति लोगों का नज़रिया बदला है। आज भी बेटे को शेष अच्छे समझे जाते खाद्य पदार्थ विशेष ध्यान देकर खिलाए जाते हैं जबकि बेटी को खिलाने-पिलाने की अधिक परवाह नहीं की जाती। यह उसकी अपनी हिम्मत है कि वह अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं को घर में खाने-पीने के प्रति स्थापित कर ही लेती है। हमारे समाज में अब भी यह कहावत कुछ हद तक कहते हुए सुनी जाती है कि "लड़कियां तो अपने आप ही बड़ी हो जाती हैं, लड़कों का ही पालन-पोषण करना पड़ता है।" यदि लड़की अपनी मर्जी की वस्तु खा भी ले तो उसको चेताया जाता है कि वो वस्तु तो उसके भाई के लिए रखी गई थी। बच्चों की परीक्षाएं चल रही हों तो बेटे के लिए माता-पिता खुद उसको बादाम की गिरियां आदि लाकर देंगे, परंतु बेटी यदि इसकी मांग भी करे तो उसको इंकार ही सुनना पड़ता है। मां स्कूल जाने वाले बेटे को तो स्कूल के लिए विदा करने से पूर्व कहेगी कि "बेटा, यह खा जा, वो खा जा", परंतु बेटी को वह इतना ज़ोर देकर कम ही कहती है। भले ही यह विचार झुठलाना मुश्किल है कि अन्य सभी रिश्तों में भेदभाव हो सकता है, एक माता-पिता हैं जो बच्चों के साथ भेदभाव नहीं कर सकते, बल्कि उनको प्रफुल्लित होते देखकर खुश ही होते हैं, फिर भी बच्चों की परवरिश में भारतीय माता-पिता का बेटे-बेटी के लिए समान दृष्टि तथा व्यवहार अभी भी एक दूर दिखाई देने वाली मंज़िल बना हुआ है।

भारतीय घर-परिवारों में बेटे और बेटी को दिये जाने वाले जेब-खर्च में अब भी कई जगह अंतर कायम दिखाई दे जाता है। साधन-संपन्न घर-परिवारों के बेटे तो माता-पिता से प्राप्त हुए धन को बेरोक-टोक उड़ाते और उसके साथ पूरी मौज-मस्ती करते, खाते-पीते, लुटाते देखे जाते हैं परंतु बेटियों को अपनी अति आवश्यक जरूरतों की पूर्ति के लिए भी एक से अधिक बार धन मांगना पड़ता है और उनको प्राय: कहां खर्च किया, कितना खर्च हुआ, कितना शेष बचा आदि सवालों का जवाब भी देना पड़ता है। ऐसा होने के परिणामस्वरूप बेटों की विद्या का स्तर तीव्रता से नीचे गिर रहा है और बेटियां कठिन परिस्थितियों में भी उनसे अधिक व अच्छे अंक ले रही हैं। मैं लगभग गत एक

वर्ष से एक हाई स्कूल में अध्यापन-कार्य कर रहा हूं। छठी श्रेणी से दसवीं श्रेणी तक सभी में लड़कियां लड़कों से कहीं अधिक अग्रणी हैं। दरअसल लड़के ध्यान देकर पढ़ते ही नहीं जबकि लड़कियां विद्या-प्राप्ति हेतु गंभीर हैं। यह कहा/माना जा सकता है कि कठिन परिस्थितियों के बावजूद भेदभाव से प्रभावित परवरिश में भी अपने भविष्य के प्रति सजग लड़कियां लड़कों को पछाड़ रही हैं। लड़कों के पछड़ जाने के अनेक कारण हैं, जिनमें एक कारण माता-पिता की ओर से उनको अनावश्यक लाड़ तथा मोह-प्यार करना और उन पर आवश्यक निगरानी की दृष्टि न रख सकना है। एक समकालीन चिंतक का यह विचार गहन विवेचन की मांग करता है कि "हमारी पीढ़ी (पचास वर्ष से अधिक आयु गुट) दोहरा संताप भोगने वाली बेहद पीड़ित श्रेणी है। पहले हमने अपने मां-बाप की डांट-डपट सहन की अब हम अपने बच्चों की धौंस सहन कर रहे हैं।" बच्चों से उनका संकेत मुख्यत: पुत्रों की तरफ है न कि पुत्रियों की ओर। इस वास्तविक वस्तुस्थिति से यह निष्कर्ष स्वाभाविक ही निकाला जा सकता है कि पुत्रियां माता-पिता की ओर से पुत्रों की निसबत कम ध्यान दिये जाने के बावजूद जहां अपना अच्छा भविष्य बनाने हेतु सुदृढ़ संकल्प के साथ सुसज्जित हैं वहां वे माता-पिता का समाज तथा देश-कौम के स्तर पर ऊंचा नाम करने के लिए भी क्रियाशील हैं। इस तथ्य को समझते तथा महसूस करते हुए भारतीय माता-पिता को पुत्रियों के बारे में प्रमुखता वाली दृष्टि एवं व्यवहार अपनाना भी ठीक होगा। कम से कम उनको पुत्रों-पुत्रियों के साथ समदृष्टि से तो व्यवहार करना ही चाहिए। उनको पुत्रियों के जज़बातों, उमंगों, आकांक्षाओं, सपनों, इच्छाओं आदि का हार्दिक एहसास करना चाहिए।

कुछ दशक पहले घर-परिवार में पुत्रियों को माता-पिता के बहुत कठोर स्वभाव का सामना करना पड़ता था, विशेषत: पिता के। स्वाभाविक (घर का काम करते हुए) छोटी-सी भूल के लिए भी पुत्री के दिल में भय बना रहता था। मां भी उसे अधिक से अधिक 'संवारने' की दृष्टि या ख़्याल से उसकी स्वाभाविक हुई भूल को पिता तक पहुंचाने का डरावा पुत्री को देती थी। अच्छी बात है कि अधिकतर घर-परिवारों में ऐसा अनचाहा व्यवहार पुत्रियों के साथ अब नहीं हो रहा। नि:संदेह आज माता-पिता की पुत्रियों के बारे में सोच, दृष्टि तथा व्यवहार में काफी अंतर आया है, जो कि एक बहुत ही अच्छी बात है, लेकिन अभी भी सुचेत या अचेत रूप से घर-परिवार के दायरे में कई कुछ ऐसा अनचाहा घटित हो रहा है जो माता-पिता को हरेक सूरते-हाल में सावधानी तथा सजगता के साथ रोकना चाहिए। अभी भी कई घरों में बड़े भाई और कुछ में तो छोटे भाई भी अपनी बहनों पर अनचाहा दबाव डालते देखे जा सकते हैं। माता-पिता प्राय: उसका या तो कोई नोटिस ही नहीं लेते या उसे पुत्री पर एक अच्छा प्रतिबंध ख़्याल करते हुए इसे पुत्री के आचरण में परिपक्वता लाने का एक प्रभावशाली ढंग समझते हुए अच्छा समझते हैं, परंतु पुत्री के दिल पर क्या बीत रही होती है उसका उन्हें तनिक-सा भी एहसास नहीं होता। अत: माता-पिता को आज पुत्रियों के प्रति बहुत सजग, सुचेत एवं संवेदनशील होना चाहिए। इसी में घर-परिवार, समाज, देश-कौम तथा मानवता का विकास विद्यमान है।



बाल्यावस्था में धार्मिक शिक्षा का अभाव न होने दें

*-डॉ. मधु बाला**

भारतीय ग्रंथों में धर्म-सम्बंधी अत्यधिक चर्चा हुई है। प्रत्येक ग्रंथ की इस विषय में भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। गुरबाणी धर्म के प्रति इस बात की साक्षी है कि मनुष्य को जीवन में सदाचरणपूर्वक रहना चाहिए। सेवा-भाव एवं सत्य का आश्रय ही जीवन में सफलता प्रदान करता है। **'धर्म'** शब्द का अर्थ सदाचार, शील, मर्यादापूर्ण जीवन व्यतीत करना है, आदर्श-सम्बंधों की स्थापना करना है।

धार्मिक शिक्षा का ज्ञान बच्चों को देते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे भावी जीवन में कट्टरपंथी न बन जाएं। उन्हें सिखाया जाना चाहिए उस धर्म का ज्ञान, जिसमें वे पल रहे हैं, बड़े हो रहे हैं, क्योंकि यदि हम बच्चों को उपदेश देना चाहते हैं, उन्हें कुछ सिखाना चाहते हैं तो उन्हें उनकी मातृ-भाषा में ही सिखाएं। धीरे-धीरे जब वे अपने धर्म का पालन करना, धर्म की मर्यादा में रहना सीख जाएं तो उन्हें यह भी बताया जाना चाहिए कि हिंदू, मुसलिम, सिक्ख, ईसाई आदि के नाम पर जो धर्म प्रचलित हैं वे जाति पर आधारित हैं, वर्ग-विशेष से सम्बंधित हैं, संप्रदाय से जुड़े हुए हैं। इन धर्म-ग्रंथों की शिक्षाएं किस प्रकार से अनेक होती हुई भी एक ही परमात्मा का भेद पाने पर केंद्रित हैं, इस बात से भी अवगत कराना चाहिए। जिस प्रकार अनेक नदियां, नाले, झरने बहते-बहते समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाते हैं, बिलकुल उसी तरह ही यदि हम धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि निष्कर्ष सबका एक ही है, मंजिल सबकी एक ही है; बुराई पर अच्छाई की विजय, असत्य पर सत्य की जीत, त्याग ही जीवन का मूल है, बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता, परोपकार से बढ़कर कोई कर्म नहीं है; बाहरी पूजा, अर्चना, आराधना की अपेक्षा भीतरी पवित्रता कई गुणा अधिक फलदायी होती है। निष्काम कर्म करना ही श्रेष्ठ फल देता है। माता-पिता एवं गुरु का आदर-सम्मान ही परमात्मा का दर्शन है। इंद्रियों को वश में रखना, प्राणियों पर दया का भाव रखना, दूसरों की वस्तु को मन से भी चुराने का विचार न करना, अच्छा व्यवहार करना, विनम्र स्वभाव की उत्कृष्टता, धर्म में आस्था और विश्वास रखना, अहिंसा ही परम धर्म है ऐसा विचार करना, शांतचित्त होकर गुरुजनों के उपदेश का श्रवण करना, पराई वस्तु की कामना न करना, परनिंदा में रुचि न रखना, मीठी वाणी बोलना, अवसर एवं परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढालना, कर्मशील होना, केवल भाग्य के भरोसे न रहना, जरूरतमंदों की निरंतर सहायता के लिए तत्पर रहना, सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणियों का कल्याण चाहना आदि अनेक ऐसे शुभ कार्य हैं जिनसे जुड़ी हुई कथाएं, महापुरुषों का चरित्र, गुरुओं, पीरों-फकीरों की बाणी प्राप्त होती है। जिस किसी माध्यम से भी बच्चों के मन में, हृदय में धर्म के प्रति, मनुष्य-धर्म के प्रति, सृष्टि-धर्म के प्रति, जिज्ञासा उत्पन्न हो और शांति भी हो, उसी माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। यदि मनुष्य का आचरण श्रेष्ठ है तो धीरे-धीरे उसमें अन्य श्रेष्ठ बातों का समावेश होता जाता है तथा

****आई-१०९, गली नं: ५, मजीठीआ इन्कलेव, पटियाला-१४७००५, फोन ०१७५-३२००९४६***

समय आने पर वह लोगों द्वारा अनुकरणीय बन जाता है। एक बार हकीम लुकमान से लोगों ने पूछा, "आप लोगों ने अदब कहां से सीखा?" उन्होंने जवाब दिया, "बे-अदबों से। उनकी जो बात मुझे पसंद नहीं आई वो मैंने अख्तियार नहीं की।" अक्लमंद आदमी उस बात से भी नसीहत हासिल कर लेता है जो मज़ाक के तौर पर कही जाए। नादान आदमी के सामने अक्ल की सौ बातें करें तो वो उसे हंसी-मज़ाक ही समझता है। आवश्यक है कि बच्चों को ज्ञान-अज्ञान, विवेक-अविवेक, अच्छे-बुरे इन सबकी शिक्षा दी जाए, ताकि वे ज्ञान रूपी सागर में गोते लगाने से पहले इसकी गहराई को जान सकें।

धार्मिक शिक्षा को केवल अपने जन्म, जातिगत परिवार तक ही सीमित न रखें, अपितु बच्चों को समाज के प्रति, देश के प्रति, मानवता के प्रति ज्ञान देने वाली शिक्षा भी प्रदान करें। सत्य-आचरण करते हुए स्वयं का बलिदान देना भी धर्म है एवं किसी अत्याचारी का वध करना भी धर्म है। संकट काल में अपरिचित की सहायता करना भी धर्म है तथा बुराई में अपनों का साथ न देना भी धर्म है।

अत: मानवता के कल्याण हेतु धर्म-प्रचारकों ने सदैव आध्यात्मिक एवं आत्मिक शुद्धि, अंत:करण की पवित्रता ही मुख्य धर्म माना है। सभी धर्मों की बाहरी पद्धति, मान्यता, स्वरूप कुछ भी हो, परंतु उनके मूल में कारण एक ही है-- उन्नति एवं कल्याण। वास्तविक धर्म-शिक्षा देश, काल, संप्रदाय, जाति-सीमा एवं रीति-रिवाजों के बंधन में नहीं बांधी जा सकती। ये सब क्रियाएं धार्मिक भावना की उत्पत्ति हेतु ही होती हैं। जब वास्तविक स्वरूप से मनुष्य का परिचय हो जाता है तब इनकी कोई सार्थकता नहीं रहती।

बाल्य-काल में यदि इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा का बीज बच्चों के मन में बोया जाए तो निश्चय ही वे न केवल अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेंगे अपितु दूसरों के लिए भी अनुकरणीय होंगे। बच्चों को तभी सिखाया जा सकेगा जब वर्तमान पीढ़ी को इन सब बातों का ज्ञान होगा। जब माता-पिता, परिवार-समाज स्वयं ही कर्मकांडों के जाल में उलझे हुए होंगे तब वे भावी पीढ़ी का निर्माण नहीं कर पाएंगे। यह कटु सत्य है कि बच्चों में यदि धार्मिक शिक्षा का अभाव हो तो इसके उत्तरदायी बच्चे नहीं, उनके अभिभावक हैं।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में जपु जी साहिब के अंतर्गत पांच खंडों की व्यवस्था की गई है, जिनमें से पहला खंड ही धर्म खंड है। यहां धर्म से अभिप्राय है-- भाव, कर्त्तव्य। इस सोपान से साधक अपने कर्त्तव्यों के प्रति, उत्तरदायित्व के प्रति सचेत होता है। वह जान लेता है कि परमात्मा ने इस धरती को धर्म के साधन-स्वरूप निर्मित किया है :

राती रुती थिती वार ॥
पवण पाणी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरम साल ॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग ॥
तिन के नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु ॥
सचा आप सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥
नदरी करमि पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ ॥
नानक गइआ जापै जाइ ॥ *(पन्ना ७)*

धर्म खंड से सच खंड तक जाने में कुल पांच पड़ाव हैं-- धर्म खंड, ज्ञान खंड, सरम खंड (श्रम खंड), करम खंड तथा सच खंड। प्रथम-- धर्म खंड को इस प्रकार बताया है :

रात-दिन, ऋतुओं, तिथियों, वारों आदि एवं हवा, पानी, अग्नि, पाताल आदि के बीच

में परमेश्वर ने धरती को स्थापित किया है। यही धरती ही जीव के कर्त्तव्य-पालन का स्थान है। यही उसका कर्त्तव्य-लोक है, जहां उसके द्वारा धर्म-पालन होना चाहिए। इस धरती पर असंख्य जीव हैं, उनके असंख्य नाम हैं। जो जीव जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार ही उसे परमात्मा के दरबार में स्थान मिलता है। परमात्मा स्वयं सत्य स्वरूप है, अत: उसका दरबार भी सच्चा है। वहां संत-जनों का आदर होता है। उसमें भी परमात्मा की कृपा ही होती है। यह खंड जीवों के कच्चे या पक्के अर्थात् बुरे या अच्छे सिद्ध होने का स्थान है। इस धरती पर ही उनकी अच्छाई या बुराई की परख होती है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि जीव की स्थिति कच्ची है या पक्की, इस बात का निर्णय प्रभु के दरबार में पहुंचकर ही होता है।

इन पंक्तियों में अच्छा-बुरा कर्म पहचानना और उसके अनुसार करणीय कार्य को करना और अकरणीय का त्याग करना ही धर्म है। धर्म की इतनी सरल, सीधी, स्पष्ट एवं गहराई-युक्त परिभाषा और कोई हो ही नहीं सकती। इसको जानने-समझने में, अपनाने में किसी भी प्रकार के विधि-विधान, नित्य-नियम आदि किसी भी कार्य की आवश्यकता नहीं है। धर्म के सम्बंध में गुरबाणी का फरमान है :

धरम राइ नो हुकमु है बहि सचा धरमु बीचारि ॥
(पन्ना ३८)

निष्कर्षत: कर्त्तव्य-पालन ही धर्म है। जैसी भी स्थिति हो मनुष्य को उसी के अनुसार अच्छा-बुरा विचारकर कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए। कर्त्तव्य-पालन का यह बीज बच्चों के मन में उनके माता-पिता, परिवार और शिक्षकों द्वारा बोया जाना चाहिए। जब उन्हें धर्म का ही ज्ञान नहीं होगा तो धार्मिक शिक्षा के बारे में वे क्या जानेंगे? इसमें बच्चे कम दोषी हैं और अभिभावक अधिक।

बाल्य-काल : सुसंस्कार-काल : सफल एवं असफल मनुष्य में अंतर केवल इतना ही है कि सफल मनुष्य किसी कार्य का प्रारंभ करने से पूर्व उस पर विचार करता है और असफल व्यक्ति कार्य की सम्पन्नता पर उसके परिणाम का आंकलन करता है। परमात्मा ने मनुष्य को सृष्टि का सर्वोत्तम जीव बनाया है। सभी योनियों में से कुछ जीव बोल नहीं सकते, तो कुछ सुन नहीं सकते, कुछ चल नहीं सकते, कुछ देख नहीं सकते, परंतु मनुष्य ऐसा जीव है, जिसके पास पांच ज्ञान-इंद्रियां हैं (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिहवा, घ्राण), जिनसे वह ज्ञान प्राप्त करता है। पांच कर्म-इंद्रियां हैं (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), जिनसे वह अपनी नित्यप्रति की शारीरिक क्रियाएं करता है। एक मन है जो उसे सोच-विचार करने की प्रेरणा देता है, परंतु दुख की बात यह है कि उस विचार-शक्ति का प्रयोग व्यक्ति तब करता है जब वह स्वयं विचार के योग्य हो जाता है। उस समय उसकी स्थिति चौराहे पर खड़े मनुष्य जैसी ही होती है। एक तरफ परिवार है तो दूसरी तरफ आजीविका उपार्जन की चिंता। सदाचार की राह पर चलने के लिए किस गुरु की शरण ले? किस पुस्तक को पढ़े? किस धर्म को अपनाए? बहुत-से यक्ष प्रश्न उसके सामने होते हैं, जिनमें से सही-मार्ग का चयन करना कठिन हो जाता है।

यदि विचार किया जाए तो दोष उस मनुष्य में नहीं है, दोष है उसके पालन-पोषण में, मार्गदर्शन में, माता-पिता की प्रेरणा और सहयोग में। बाल्यावस्था में संस्कारों का ध्यान न रखते हुए जब मनुष्य युवावस्था को प्राप्त होता है तो उसमें हमें दोष दिखाई देने लगते हैं। हम यह नहीं सोचते कि "बोए पेड़ बबूल का तो आम कहां से होए?" बचपन में लगभग सभी अभिभावकों का यही कहना होता है कि "अभी

बालक है, सीख जाएगा।" यदि हम प्रकृति के निकट हैं तो हमें जानना चाहिए कि वृक्ष की कामना से पहले बीज बोना पड़ता है, तभी एक दिन वह दृढ़ आकार वाला वृक्ष बनता है, लेकिन जब हमने बीज ही नहीं बोया तो वृक्ष की कामना करना कितना हास्यास्पद लगता है! आधार रहित इमारत बनाना, केवल कल्पना में ही सार्थक हो सकता है, वास्तविक जीवन में नहीं। ऐसा ही आधार बालक को अपने माता-पिता, परिवार, आस-पास के वातावरण और समाज से मिलता है। यदि बालक में अच्छे संस्कार नहीं हैं तो इसमें इसका दोष कम तथा इसके अभिभावकों का अधिक है। जब तक वह स्वयं विचार करने योग्य होगा तब तक इसके जीवन का आधारभूत पड़ाव बीत चुका होगा। फिर उसका यथेष्ठ लाभ भी उसको प्राप्त हो सकेगा या नहीं, इस विषय में भी आशंका है।

एक दार्शनिक की घटना है जो कि ग्रीस के इतिहास में आती है। एक दार्शनिक दिन के बारह बजे हाथ में लालटेन लेकर निकल पड़ा। लोग हैरानी से देखते हैं कि इतना बड़ा विद्वान और सूर्य के प्रकाश में लालटेन लेकर घूम रहा है नीचे की तरफ ऐसे देख रहा है मानो कोई वस्तु खो गई हो। जब कुछ लोगों ने साहस करके उससे पूछ ही लिया तो उसने उत्तर दिया, "हे एथेंस वासियो! मैं 'मनुष्य' की तलाश कर रहा हूं।" जनता में से कुछ मनचलों ने कुछ तीखी आवाज़ में कहा-- "तो क्या हम मनुष्य नहीं हैं?"

दार्शनिक ने दृढ़ स्वर में कहा-- "नहीं, तुम मनुष्य नहीं हो।"

एक युवक ने अधीरता से पूछा-- "कहिए फिर हम कौन हैं?"

दार्शनिक-- "तुममें से कोई दुकानदार है, कोई सरकारी अफसर, कोई किसान, कोई अध्यापक, कोई छात्र, कोई स्त्री, कोई पुरुष, कोई माता तो कोई पिता है-- पर शोक! तुम में से 'मनुष्य' कोई नहीं है।"

ग्रीक दार्शनिक का यह कथन आज भी अक्षरश: सत्य है, क्योंकि हम बहुत कुछ हैं, पर जो हमें होना चाहिए वह हम नहीं हैं अर्थात् 'मनुष्य'। 'मनुष्य' सिर्फ हाड-मांस के पुतले का नाम नहीं है, जिसमें मनुष्यत्व है वही 'मनुष्य' है। आश्चर्यजनक बात है कि माता-पिता तन-मन-धन सब प्रकार से बच्चों के भविष्य के प्रति चिंतित रहते हैं, परंतु जब उनको सुसंस्कार देने की बात आती है तो "बड़ा होगा, अपने आप सब सीख जाएगा" कहकर कर्त्तव्य-विमुख हो लेते हैं। बाल्यावस्था कुम्हार के बर्तन के सदृश होती है। कुम्हार बर्तन को अंदर से सहारा भी देता है और बाहर से भी उसे हल्के हाथ या लकड़ी के हथौड़े की चोट से सही आकार देता है। इसी प्रकार बाल्य-काल में प्यार से, डांट से, फटकार से, तो कभी मनुहार से सीखी बातें हमारे जीवन का अंग बन जाती हैं। सर्वप्रथम इस तथ्य को जान लेना चाहिए कि बच्चा अनुकरण करता है। भले ही वह बोल न भी पाता हो तब भी वह इस बात को अवश्य जानता है कि जो उसके माता-पिता कर रहे हैं और जो उसे करने के लिए कहा जा रहा है, उसमें समानता है कि नहीं। उदाहरणार्थ-- बच्चे को झूठ बोलना प्राय: घर-परिवार वाले ही सिखाते हैं, जैसा कि एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के घर जाता है तो सीखा-सिखाया बच्चा दरवाज़ा खोलते ही कह उठता है-- "अंकल! पापा घर पर नहीं हैं।"

अत: बीज अथवा आधार हमेशा हमें दिखाई दे, यह जरूरी नहीं है। वह अपना उचित एवं यथेष्ठ कार्य धरती के भीतर ही करता है। जब बीज की सत्ता समाप्त हो जाती है तभी वह धरती के ऊपर दिखाई देता है। अच्छे संस्कारों का बीज बाल्य-काल में ही बोया जाना चाहिए, ताकि वह युवावस्था तक अच्छी

तरह से पुष्पित एवं पल्लवित हो सके। बच्चे को किसी विशेष बच्चे के जीवन-चरित्र से शिक्षा दी जानी चाहिए। भक्त प्रहलाद, जो परमात्मा का मनन-चिंतन करता हुआ पिता के मिथ्या अभिमान का त्याग कर देता है, आज हमारे लिए एक आदर्श है।

बाल्य-काल में दिए गए सुसंस्कारों को मृत्यु भी मिटा नहीं सकती। यह प्रसंग उस समय का है जब बादशाह औरंगजेब के शासन-काल में सरहिंद के नवाब वज़ीर खां ने छोटे साहिबजादों-- बाबा जोरावर सिंघ और बाबा फ़तहि सिंघ को गिरफ्तार कर लिया था। वज़ीर खां ने भरे दरबार में साहिबजादों से पूछा-- "ऐ बच्चो! तुम लोगों को दीन इसलाम की गोद में आना मंजूर है या कत्ल होना?" तब साहिबजादों का यही जवाब था कि "जब हमारे पूर्वजों ने कल्पनातीत यातनाएं सहन कीं, परंतु धर्म न छोड़ा तो हम भी अपने धर्म को जान से प्यारा रखेंगे।" साहिबजादों के मन में बचपन में ही यह संस्कार दृढ़ हो गया था। उन्हें बचपन में दिए गए संस्कारों को मृत्यु भी डिगा न सकी।

साधारणतया जो विचार व्यक्ति को सुसंस्कृत एवं सभ्य बनाते हैं उन्हें संस्कार कहते हैं। परमात्मा मानव बनाता है तथा संस्कार मानव को महामानव बनाते हैं। संस्कारों की संख्या निश्चित करना कठिन है, क्योंकि जो आचरण मानव-जीवन में शुद्धता, सत्यता एवं दृढ़ता लाए वही संस्कार हैं।

बच्चों को बचपन से ही त्याग, दया, उदारता, क्षमा, सहनशीलता, सत्य, विनम्रता, निष्कपटता, सेवा, परोपकार की शिक्षा विभिन्न महान चरित्रों के उदाहरणों द्वारा दी जानी चाहिए। प्रभु-भक्ति का संस्कार भी उनके जीवन का अनिवार्य अंग है, यह भी समझाना चाहिए, क्योंकि श्री गुरु ग्रंथ साहिब की यह मान्यता है कि सच्चा आत्मिक ज्ञान ही साधक के तन और मन को निर्मलता प्रदान करता है :

जलि मलि काइआ माजीऐ भाई भी मैला तनु होइ ॥
गिआनि महा रसि नाईऐ भाई मनु तनु निरमलु होइ ॥ *(पन्ना ६३७)*

प्रभु का नाम-सिमरन ऐसी दिव्य औषधि है जिससे तन एवं मन दोनों ही संस्कारयुक्त होते हैं :

अउखध मंत्रु मूलु मन एकै जे करि द्रिड़ु चितु कीजै रे ॥
जनम जनम के पाप करम के काटनहारा लीजै रे ॥ *(पन्ना १५६)*

सांसारिक दुखों से मुक्ति और करोड़ों अपराधों से दूषित हुए जीवन का संस्कार मात्र नाम-सिमरन से है :

भव खंडन दुख भंजन स्वामी भगति वछल निरंकारे ॥
कोटि पराध मिटे खिन भीतरि जां गुरमुखि नामु समारे ॥ *(पन्ना ६७०)*

धर्म-ग्रंथों में अनेक प्रकार के बाहरी एवं भीतरी संस्कारों का वर्णन मिलता है, परंतु बाहरी संस्कारों की अपेक्षा अंतर्मन की शुद्धता का महत्त्व कहीं अधिक है। परम सत्य यह भी है कि यदि बच्चा बाहरी वातावरण की पवित्रता को अपना लेता है तब उसके बाद ही धीरे-धीरे अच्छे संस्कार, अच्छी शिक्षा, सुविचार भी उसके जीवन एवं आचरण को शुद्ध बना देते हैं। सुसंस्कारों को धारण करने का अति उपयुक्त समय तो बाल्य-काल ही है तथापि अच्छे गुण, अच्छी आदतों एवं संस्कारों को धारण करने की कोई आयु नहीं होती-- "जब जागे तभी सवेरा।" अभिभावकों को विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि पांच-छ: वर्ष तक तो बच्चे का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं पर रहता है। मेरे विचार से तो बाल्य-काल सुसंस्कारों की शिक्षा देने का सर्वोत्तम काल है।



बच्चे एवं उनकी संगत

-डॉ. राजेंद्र सिंघ 'साहिल'

बचपन जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दौर है। कहते हैं कि बाल-मन स्वच्छ दर्पण या कोरा कागज़ होता है, जिसमें ज़िंदगी के अनुभव धीरे-धीरे प्रतिबिंब बनकर या लिखावट बनकर उभरते रहते हैं। अनुभव सुंदर एवं मृदु हों तो प्रतिबिंब या लिखाई भी आकर्षक और कोमल उभरती है और यदि अनुभव कटु हों तो इस स्वच्छ दर्पण या कोरे कागज़ पर कड़वाहट की कालिख पुत जाती है।

जीवन अनुभवों की कोमलता या कटुता का कारण होता है-- परिवेश यानी आस-पास का माहौल। बच्चे को जैसा माहौल मिलता है उसके अनुभव भी उसी रंग में रंग जाते हैं। आगे चलकर उसका व्यक्तित्व भी वही रूप धारण कर लेता है। शिशु को उचित परिवेश प्रदान करने की सारी जिम्मेदारी हम बड़ों की होती है। हम उसे जो बनाना चाहें बना सकते हैं, इसीलिए बच्चे को कच्ची मिट्टी भी कहा जाता है, जिससे जैसी चाहो मूरत गढ़ लो।

आज बच्चों में अनेक समस्याएं लक्षित हो रही हैं। मूल्य-हीनता, संस्कार-भ्रष्टता, अनैतिकता, धर्म-विमुखता, सांस्कृतिक गौरव के प्रति अनभिज्ञता आदि-आदि। ये सभी इसी कारण हैं कि हम सभी बड़े लोग उन्हें उचित परिवेश नहीं दे पा रहे हैं। बच्चों के जीवन की नींव व्यक्तित्व की इमारत उठने से पहले ही खिसकती जा रही है। हम बच्चों में स्पष्ट विवेकशीलता का निर्माण कर पाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

गुरु साहिबान की जीवन-साखियों एवं सिक्ख इतिहास में विवेकशील बचपन के अनेक अद्भुत उदाहरण प्राप्त होते हैं जो इस कार्य में अत्यंत प्रेरक साबित हो सकते हैं। श्री गुरु नानक देव जी द्वारा 'सच्चा सौदा' किये जाने वाला प्रसंग अनुपम है। व्यापार करके मुनाफा कमाने के लिए दिये गये बीस रुपयों द्वारा भूखे साधुओं को भोजन करा देने का निर्णय एक सुंदर विवेकशील हृदय ही कर सकता है। इसी प्रकार सिक्खों के एक जत्थे से प्रभावित होकर घुंघनियां बेचने वाले मात्र नौ वर्षीय भाई जेठा जी का श्री गोइंदवाल साहिब गुरु-चरणों में आने का निर्णय लेना अद्भुत विवेकशीलता नहीं तो और क्या है?

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब द्वारा मात्र ११ वर्ष की आयु में सिक्ख संगत के नेतृत्व की डोर थामना, बाल-गुरु अष्टम बलबीरा श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब जी का संपूर्ण जीवन, नौ वर्षीय श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी का नवम् पातशाह गुरु-पिता श्री गुरु तेग बहादर साहिब से कश्मीरी पंडितों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा करने का आग्रह करना और छोटे साहिबज़ादों-- बाबा ज़ोरावर सिंघ जी एवं बाबा फ़तहि सिंघ जी की शहादत . . . आदि-आदि अनेक प्रसंग हैं जो बाल-अवस्था की असीम सामर्थ्य को प्रकट करते हैं।

इतने अमीर विरसे के मालिक होने के बावजूद हमारे बच्चों का पथभ्रष्ट हो जाना हमारा ही कुसूर है। ऐसे प्रेरणादायक प्रसंगों को बच्चों तक पहुंचाने के बदले हमने उन्हें दिये हैं-- टी. वी. चैनल, मोबाइल फोन, इंटरनेट. . .। आज

१/३३८, 'स्वप्नलोक', दशमेश नगर, मंडी मुल्लांपुर दाखा (लुधियाना), पंजाब-१४११०१, मो: ९४१७२-७६२७१

बच्चा माता-पिता के साथ नहीं खेलता, अपने हमउम्र बच्चों के साथ भी नहीं खेलता, वह खेलता है सैकड़ों चैनल दिखाने वाले टी.वी. के रिमोट कंट्रोल से, दुनिया भर की चीजें हथेली में समेट ले आने वाले मोबाइल से और सारे गुप्त-अगुप्त रहस्य प्रकट कर देने वाले इंटरनेट को सर्फ़ करने वाले कम्प्यूटर के की-बोर्ड से।

इतने शक्तिशाली माध्यमों के द्वारा बच्चों के जीवन को एक व्यवस्थित दिशा देना बेहद आसान और प्रभावशाली होगा, परंतु इन माध्यमों के धन-लोलुप कर्ता-धर्ता ऐसा कुछ पेश कर रहे हैं जो इनकी कोमल भावनाओं को कुचल उन्हें अपसंस्कृति की ऐसी आग के हवाले कर देता है जो उनके जीवन की कोपलों को खिलने से पहले ही झुलसा देता है।

वास्तव में, जीवन के इस सबसे महत्त्वपूर्ण दौर 'बचपन' में बच्चों की संगत ऐसे अंगारों से हो जाती है जिन्होंने उनके हाथों को जलाना ही है।

गुरबाणी का फरमान है कि उत्तम संगत उत्तम मनुष्य का निर्माण करती है, उसमें गुण उत्पन्न करती है और अवगुणों को धो देती है :

ऊतम संगति ऊतमु होवै ॥
गुण कउ धावै अवगण धोवै ॥ (पन्ना ४१४)

परंतु हमने अपने बच्चों को उत्तम संगत के बजाय ऐसी निकृष्टतम संगत में धकेल रखा है जहां नैतिक जीवन-मूल्य और महान सांस्कृतिक विरासत के दृश्यों की जगह है अश्लीलता, कदाचार, हिंसा, छल-कपट, अवगुण ही अवगुण, गुण एक भी नहीं . . .।

गुरु साहिबान का हुक्म है कि सच्चा मित्र, सखा, दोस्त वह है जो शुद्ध मति दे, अवगुण दूर करे, जीवन संवारे :

सो साजनु सो सखा मीतु जो हरि की मति देइ ॥
(पन्ना २९८)
साजनु बंधु सुमित्रु सो हरि नामु हिरदै देइ ॥
अउगण सभि मिटाइ कै परउपकारु करेइ ॥
(पन्ना २१८)

दूसरी ओर है-- मनमुख की दोस्ती, जो भौतिकता में उलझाकर मन-जीवन में विकार पैदा करती है :

मनमुख सेती दोसती थोड़ड़िआ दिन चारि ॥
इसु परीती तुटदी विलमु न होवई इतु दोसती चलनि विकार ॥ (पन्ना ५८७)

इतने बड़े इलेक्ट्रॉनिक तामझाम से हमारी दोस्ती असल में मनमुख वाली दोस्ती है। विज्ञान ने हमें अनेक उपकरण उपलब्ध करवाये हैं, परंतु आज ये उपकरण वास्तव में 'मनमुख' की भूमिका निभा रहे हैं।

हम सब बड़े तो अपने काम-धंधों, अपनी काम-कमाई में लगे हैं और हमारे बच्चों ने दोस्ती कर ली है-- अनगिनत चैनलों से, मोबाइल की रंगीन दुनिया से और इंटरनेट के जंगल से।

बच्चों को इनकी 'मनमुखी संगत' से सिर्फ़ विकार और अवगुण ही मिल रहे हैं।

हम बड़ों का फ़र्ज है कि पहले स्वयं इस 'मनमुखी संगत' की दलदल से बाहर आयें, फिर बच्चों को पूर्ण व्यक्तित्व मानते हुए, उन्हें पूरा सम्मान देते हुए, उन्हें मात्र बच्चे न समझकर, उनके स्तर पर जाकर उनसे दोस्ती करें, उनके लिए पूरा समय निकालें, उनसे संवाद स्थापित करें और उन्हें इस 'मनमुखी संगत' से बाहर निकालकर सतिसंगत प्रदान करें। इनी इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का उपयोग करके उन्हें गुरु साहिबान के जीवन, गुरबाणी और सिक्ख इतिहास से जोड़ें, भले उन्हें 'बाबाणीआं कहाणीआं' दादी-नानी की जगह सीडी-डीवीडी या यू-ट्यूब से सुनने को मिलें।

यह काम हमारे लिए कोई बाहर वाला आकर नहीं करेगा, यह हमें स्वयं ही करना होगा। ❁

गुरुपर्वों एवं ऐतिहासिक दिवसों का महत्त्व : बच्चों के संदर्भ में

*-डॉ. सत्येंद्रपाल सिंघ**

भौतिकवादी जीवन के भारी दबावों ने मनुष्य को इतना व्यस्त कर दिया है कि उसकी दिनचर्या स्वचालित उपकरण की तरह चलती चली जाती है निर्बाध गति से और पल भर का ठहराव भी उसमें अपराधबोध भर देता है। अपने आस-पास तो क्या अपने बारे में मुड़कर देखने, सोचने-समझने का भी समय उसके पास नहीं होता। धार्मिक-सामाजिक आयोजन ही हैं जो इस अनथक दौड़ से कुछ पल के लिए मनुष्य को विरत करके उसे अपने भूत और भविष्य की सुधि लेने का अवसर देने के लिए आगे आते हैं। ऐसे आयोजन मनुष्य को प्रेरित करते हैं कि अपने इतिहास से प्रेरणा लिए बिना अपने भविष्य को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। ये आयोजन उसे सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी एहसास कराते हैं।

विश्व में नगण्य जनसंख्या और नवीनतम पृष्ठभूमि होने के बावजूद सिक्ख धर्म भाग्यशाली है कि उसका इतिहास विचित्र घटनाओं से परिपूर्ण है जो उसे अलग ही गौरवमयी चमक प्रदान करती हैं। सभी दस गुरु साहिबान का प्रेरणाप्रद जीवन-काल किसी भी जीवन को बदल देने के लिए सर्वसक्षम है। सभी सिक्ख गुरु साहिबान का प्रकाश-पर्व, गुरगद्दी-पर्व तो दुनिया भर के गुरुद्वारा साहिबान में मनाया जाता है, साथ ही सिक्ख धर्म की महान घटनाओं को स्मरण करने के लिए, शहीदों का स्मरण करने के लिए जिन भक्तों की बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल की गई है, उनका स्मरण करने के लिए भी विभिन्न आयोजन वर्ष भर चलते रहते हैं। नि:संदेह ये आयोजन अधिक व्यापक स्तर पर होने लगे हैं, अधिक से अधिक संस्थाएं इन आयोजनों में जुड़ रही हैं किंतु सोचने वाली बात है कि इनसे जिस प्रेरणा, जिस बदलाव की आशा की जाती है, वह कम होने लगी है। इन आयोजनों को या तो रस्म अदायगी बना दिया गया है या आत्म प्रचार का जरिया। ऐसे में सिक्ख कौम के भविष्य पर भी संकट के बादल मंडराने लगे हैं। गुरुपर्व और अन्य ऐतिहासिक दिवस, जो गुरुद्वारों में मनाये जाते हैं, उनका स्वरूप विशुद्ध धार्मिक रहे और उनसे सेवा, समर्पण सदाशयता की भावना प्रकट हो, यह तय करना आवश्यक हो गया है कौम के भविष्य के लिए। इस विचार के केंद्र में हमें बच्चों को रखना होगा, तभी इसे सार्थक बनाया जा सकेगा। भविष्य बच्चों के कंधों पर है और गुरुपर्व बच्चों को भविष्य के संस्कारवान सिक्ख बनाने का माध्यम हैं, इसलिए बच्चों को गुरु-घर और गुरु-विचारों से जोड़ना समय की मांग है। इसके साथ ही यह बच्चों के वैयक्तिक विकास को भी प्रशस्त करने वाला विचार है, ताकि वे एक संस्कारवान सिक्ख के साथ ही सुशिक्षित-सफल नागरिक भी बन सकें।

आज यह माना जाता है कि आत्म-विश्वास और एकाग्रता की सीढ़ियों पर चढ़कर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। इन गुणों

**E-१७१६, राजाजीपुरम, लखनऊ-२२६०१७, मो. : ९४१५९६०५३३*

की शिक्षा किसी भी विद्यालय में नहीं दी जाती। इन गुणों को आत्मसात करना पड़ता है। सिक्ख कौम विश्व की सबसे भाग्यशाली कौम है कि उसके पास इन गुणों को पाने के विद्यालय के रूप में गुरु-घर और शिक्षक के रूप में गुरु-शबद मौजूद है। गुरुद्वारा एक पवित्र स्थान है जहां सतिगुरु विराजमान हैं :

सा धरती भई हरीआवली जिथै मेरा सतिगुरु बैठा आइ ॥
से जंत भए हरीआवले जिनी मेरा सतिगुरु देखिआ जाइ ॥ (पन्ना ३१०)

गुरु-घर में सतिगुरु के विराजमान होने से वह स्थान धन्य हो गया और उस स्थान पर जाकर जिससे सतिगुरु के दर्शन किये, वह भी धन्य हो गया :

धनु धंनु पिता धनु धंनु कुलु धनु धनु सु जननी जिनि गुरू जणिआ माइ ॥
धनु धंनु गुरू जिनि नामु अराधिआ आपि तरिआ जिनी डिठा तिना लए छडाइ ॥(पन्ना ३१०)

वे पिता और माता धन्य हैं जिन्होंने गुरु-घर और गुरु-शबद की महानता को जान लिया और अपने कुल से भी जोड़ा। इसी तरह समाज का उद्धार संभव है। गुरु-घर हरेक के लिए खुला है, हर समय खुला है, प्रतिदिन जाकर जीवन सफल करें, किंतु गुरुपर्वों और ऐतिहासिक दिवसों के आयोजन पर विशेष रूप से बच्चों को साथ ले जाने वाले, उन पर्वों के महत्त्व की जानकारी देने वाले माता-पिता धन्य हैं। एक बच्चा जब अपनी विरासत से जुड़ता है, अपने गुरुओं के बारे में जानता है, अपनी कौम को ऊंचाई पर ले जाने वाली घटनाओं से रूबरू होता है तो उसे अपनी पहचान स्थापित करने में सहायता मिलती है। जब उसे पता चलता है कि एक सिक्ख होने के क्या अर्थ हैं और कितनी कठिनाइयों से सिक्खी का रंग-रूप निखरा है तो उसे अपनी पहचान पर गर्व होता है और यह गौरव उसमें आत्म-विश्वास को जन्म देता है। सांसारिक पदार्थों का गर्व आत्म-विश्वास नहीं दे सकता, क्योंकि वे अस्थायी हैं, चलायमान हैं और प्रतिस्पर्द्धा के युग में कौन कब आगे-पीछे है, कहा नहीं जा सकता। यदि अद्वितीय है तो सिक्ख कौम का इतिहास। यदि हमें इस विरासत की महानता का ज्ञान नहीं होगा तो हम उस पर गर्व कैसे कर सकेंगे? यदि बच्चों को ज्ञात होगा कि श्री गुरु नानक देव जी ने कैसे सहजता की राह दिखाई, श्री गुरु अंगद देव जी, श्री गुरु अमरदास जी, श्री गुरु रामदास जी ने कैसे सेवा, विनम्रता और समर्पण को अपनाया, श्री गुरु अरजन देव जी ने कैसे श्री गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन किया, कैसे शहादत दी, श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने कैसे आत्मिक निडरता के संयमित पक्ष को सामने रखा, श्री गुरु हरिराय साहिब ने कैसे समाज का हित किया, श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब ने कैसे मानवता की सेवा की, श्री गुरु तेग बहादर साहिब और श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने कैसे महान बलिदानों से अन्याय का उत्तर दिया और निर्विकार रहकर विषम परिस्थितियों का सामना किया तो वह बच्चा गर्व से तो भर ही उठेगा, अपने जीवन में भी उन स्थापित मूल्यों और आदर्शों को उतारने का प्रयास करेगा। जब अंतर में विश्वास का भाव हो तो परिस्थिति कैसी भी हो, यदि उससे निपटने का मार्ग उसके पास है, तो जीवन की राह आसान हो जाती है और भटकाव भी समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि सभी गुरु साहिबान ने समाज और परिवार में रहकर सामान्य जीवन जिया, इसलिए वे सारी स्थितियां उनके जीवन में आयीं जो आज किसी को भी

प्रभावित कर सकती हैं। उन्होंने हमें इन सारी स्थितियों से स्वयं निपटकर दिखाया। उन्हें अपनाकर हम अपनी राह खोज सकते हैं। यह विश्वास जब मन में हो तो व्यक्तित्व सबल हो जाता है।

आज व्यक्तित्व विकास के तमाम कोर्स बाज़ार में हैं, जो हर आयु वर्ग के लिए बनाये गये हैं। बच्चों के लिए भी कई कोर्स हैं जहां महंगी फीस ली जाती है। इन कोर्सों में बस सिद्धांत और सूत्र बताये जाते हैं जो बेअसर साबित होते हैं और मूल चरित्र नहीं बदलता। गुरु-घर एक ऐसा विश्वविद्यालय भी है जहां ज्ञान निरंतर प्रवाहित हो रहा है और जो सभी के लिए बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध है। गुरुपर्व और अन्य आयोजन विशेष कोर्स की तरह हैं जो हमारे अंदर विशिष्ट गुणों का विकास करने में सहायक हैं। श्री गुरु नानक देव जी के प्रकाश-पर्व पर यदि बच्चा गुरु जी द्वारा पांधे के घर जाने और शिक्षा लेने की कथा सुन रहा है तो उसके मन-मस्तिष्क में स्वत: एक बीज प्रस्फुटित होगा कि सच्चा ज्ञान क्या है? हर गुरुपर्व से जब बच्चा जुड़ता है और उसके महत्त्व के बारे में जानता है तो उसके चेतन-अवचेतन मन में एक सद् विचार अवश्य निरूपित होता है और इस तरह के सद् विचारों का एक पुंज बनकर उसकी राह को आलोकित करता है :

गुण संग्रहु विचहु अउगुण जाहि ॥
पूरे गुर कै सबदि समाहि ॥१॥रहाउ॥
गुणा का गाहकु होवै सो गुण जाणै ॥
अंम्रित सबदि नामु वखाणै ॥
साची बाणी सूचा होइ ॥
गुण ते नामु परापति होइ ॥ (पन्ना ३६१)

जो गुणों का मोल जानता है वही गुण पाने का प्रयास करता है। उसे मालूम है कि गुण गुरु-शबद से ही मिल सकते हैं इसीलिए वे गुरु-शबद को आत्मसात करके गुण प्राप्त करता है और अवगुण दूर करता है। गुरु-शबद से वह शुद्धता प्राप्त कर लेता है। बहुत-से शबद विशेष परिस्थितियों में गुरु साहिबान द्वारा उच्चारित किये गये हैं। यदि हमें इतिहास का ज्ञान हो और उन घटनाओं को ध्यान में रखकर उन गुरु-वचनों को पढ़ें तो शबद का भाव सरलता से मन में बैठ जाता है, जो प्रेरणा प्रदान करता है। बच्चों में गुण हों, उनका जीवन स्वच्छ और सरल हो, वे प्रगति करें, ऐसा कौन-से माता-पिता नहीं चाहते? यदि माता-पिता वास्तव में अपने बच्चों के बारे में ऐसी सोच रखते हैं तो उन्हें अपने बच्चों को इस योग्य बनाना होगा। यह योग्यता गुरु-घर और गुरु-शबद ही दे सकता है।

बच्चों में गुण हों यही पर्याप्त नहीं है, उन गुणों पर खरा उतरना भी आवश्यक है। बच्चे को ज्ञात है कि सच बोलना चाहिए किंतु यदि सच पर खड़ा नहीं हो सकता तो ऐसा ज्ञान निरर्थक है। गुरु साहिबान ने निडर और निर्विरोध रहने की बात की तो निर्भय और निरवैर रहकर भी दिखाया। उन्होंने जीवन के जो भी सिद्धांत प्रतिपादित किये उनके प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता के प्रतिमान भी स्थापित किये। एकाग्रचित्त होकर उन्होंने परमात्मा पर विश्वास रखना, सच के मार्ग पर चलना सिखाया। अस्थिर बुद्धि और दुविधापूर्ण प्रवृत्ति विकास में सबसे बड़ी बाधक है। इससे उबरने का एकमात्र विधान गुरु-शबद से जुड़ना है :

गुर साखी अंतरि जागी ॥
ता चंचल मति तिआगी ॥
गुर साखी का उजीआरा ॥

ता मिटिआ सगल अंध्यारा ॥ (पन्ना ५९९)

एकाग्रता एक अभ्यास है जो चरित्र में परिवर्तित हो जाता है। बच्चा जब अपने इतिहास को जानेगा, गुरु-शबद के महत्त्व को समझेगा तभी परमात्मा के उस एक मार्ग पर चलने के लिए तैयार होगा जो गुरु साहिबान ने बताया है। उसका चित्त जब गुरु पर टिकने लगेगा तो स्वयं ही आत्मिक बल बढ़ने लगेगा। जिसका चित्त गुरु पर टिक गया वह अपनी एकाग्रता की क्षमता से कुछ भी हासिल कर सकेगा। हर कार्य चित्त लगाकर करना और परिपूर्णता में करना ऐसे लोगों का स्वभाव बन जाता है।

गुरुपर्वों, ऐतिहासिक अवसरों पर या प्रतिदिन गुरु-घर आना व्यक्तित्व के समग्र विकास की राह है। गुरु-घर की मर्यादा आत्मानुशासन, विनम्रता और सेवा की मर्यादा है। धैर्य से श्री गुरु ग्रंथ साहिब के समक्ष माथा टेकना, आदरपूर्वक संगत में बैठना, ध्यान से गुरबाणी, कथा-विचार सुनना, सरबत्त के भले की अरदास में शामिल होना, हुकमनामा सुनना एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे ईमानदारी से जुड़ने वाले की आत्मा निखर उठती है।

सिक्ख कौम का भविष्य कैसा हो यह आज तय करना होगा। इसके लिए दो स्तरों पर प्रयास होना चाहिए। एक तो पारिवारिक स्तर पर, जिसका उत्तरदायित्व मुख्यत: माता-पिता पर जाता है, वो पहले स्वयं अपने विरसे को जानें, फिर उसे बच्चों तक पहुंचायें। दूसरी तैयारी गुरुद्वारों के स्तर पर होनी चाहिए और गुरुपर्व मनाने के ढंग को थोड़ा व्यापक बनाकर गुरुपर्वों पर बच्चों की भागीदारी अनिवार्य तौर पर सुनिश्चित करने के लिए निबंध प्रतियोगिताएं, भाषण प्रतियोगिताएं, प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम, गुरबाणी पाठन-कीर्तन आदि प्रतियोगिताएं करायी जा सकती हैं। प्रतियोगिताएं ज्ञानवर्द्धन करने वाली हों। पुरस्कार के रूप में उन्हें मोबाइल, टिफ़िन आदि देने के स्थान पर सिक्ख इतिहास की पुस्तकें, सीडी, पोथियां, प्रतीक चिन्ह आदि दिये जायें तो उत्तम होगा। आम तौर पर स्थानीय गुरुद्वारों में अपने असर के कारण प्रबंधक बन गये लोग जहां प्रबंध व्यवस्था अपने ढंग से देखते हैं वहीं धार्मिक सिद्धांतों की व्याख़्या करने का शौक भी पूरा करने लगते हैं, जिससे संगत में विशेष तौर पर बच्चों में भ्रांतियां उत्पन्न होने का खतरा होता है। गुरु-घर में प्रमाणिक चर्चा, प्रमाणिक माध्यम से होनी चाहिए। इसके लिए शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें सबसे अधिक भरोसे योग्य हैं। बच्चों को यह भी बताना चाहिए कि गुरु-वचन में मात्र एक शब्द का फेर करके गलत व्याख़्या करने वाले रामराय को सदा के लिए गुरु-घर से अलग कर दिया गया था।

एक बड़ी सिक्ख आबादी पंजाब के बाहर बसती है, जहां शहरों में गिनती के सिक्ख परिवार हैं। उन परिवारों के बच्चे जब घर से बाहर निकलते हैं और स्कूलों में पढ़ने जाते हैं तो उन्हें अपनी वेश-भूषा, सिर पर सजी दसतार आदि को लेकर कई सवालों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी परेशानी का सबब होता है। उनकी असहजता उनके व्यक्तित्व को भी प्रभावित करती है। बच्चे को जब अपनी गौरवपूर्ण विरासत की जानकारी होगी तो वो किसी भी असहजता को दरकिनार करते हुए अपने आत्मविश्वास को बाख़ूबी प्रकट कर सकेगा।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के चारों साहिबज़ादों

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

बाल साहित्य का बच्चों के जीवन में स्थान

*-डॉ. मनजीत कौर**

साहित्य समाज का दर्पण है जिसमें जीवन का स्पन्दन है। चिंतकों के अनुसार अनुभव के क्षण अनुभूति बनकर साहित्य रूपी जमीन पर पड़ते हैं, फलस्वरूप सृजन होता है। भारतीय साहित्य में धर्म भावना के अन्तर्गत ही नैतिकता का समावेश हो जाता है। साहित्य को जीवन की व्याख्या मान लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में कोई न कोई प्रेरणा अवश्य समाहित होती है। जीवन में कमज़ोरियों को दूर करने हेतु नैतिक बल होना जरूरी है। अत: साहित्य में धर्म और नीति का विशेष महत्त्व है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भी साहित्य और नैतिकता का घनिष्ठ सम्बंध है।

जीवन में साहित्य का स्थान : चिंतकों के चिंतनानुसार साहित्य वह जादू की लकड़ी है जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा के दर्शन करा देती है। जे. कृष्णमूर्ति का कथन इस संदर्भ में कितना सटीक है-- "उचित प्रकार की शिक्षा का अर्थ है प्रज्ञा को जागृत करना तथा संबंधित जीवन का पोषण करना। केवल ऐसी ही शिक्षा एक नवीन संस्कृति तथा शांतमय विश्व की स्थापना कर सकेगी।" स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य ही जीवन में क्रांति ला सकता है।

विद्वानों के कथनानुसार साहित्य में वह शक्ति है जो तीर, तलवार एवं बम के गोलों में भी नहीं होती। इसलिए हिदायत दी जाती है कि ज्ञान देने वाला साहित्य पढ़ने में रुचि पैदा करनी चाहिए क्योंकि पढ़-सुनकर हमारे अंदर बहुत कुछ समाहित हो जाता है। वस्तुत: कथाएं ही हमारी सच्ची शिक्षक हैं। अंग्रेजी साहित्य की प्राध्यापिका क्रिस्टीना के विचारानुसार-- "साहित्य वो दरवाजा है, जिसे खोलने पर पिछले सारे राज़ों को जाना जा सकता है। हमारा समाज एवं सांस्कृतिक रूप कैसा हुआ करता था, यह सब हमारा साहित्य ही हमें बताता है। यह जरूरी नहीं कि केवल साहित्य में करियर बनाने वाले व्यक्ति को ही साहित्य की समझ होनी चाहिए, बल्कि यह तो समाज में हर व्यक्ति की आधारभूत जरूरतों में से भी एक है। यह हमारे भीतर किसी भी पहलू को गहराई से समझने और परत दर परत जानने की सोच विकसित करता है। यदि हम अपने साहित्य से नाता रखते हैं तो इर्द-गिर्द होने वाली घटनाओं और मुद्दों को बेहतरी से आंक सकेंगे।" चार्ल्स बुकोफ्सकी ने तो यहां तक लिखा है कि "साहित्य के बिना जीवन नर्क है।" चार्ल्स विलियम इलियट के अनुसार-- "किताबें सबसे खामोश, सबसे पक्की दोस्त होती हैं; सर्वसुलभ सलाहकार और साथी; शांत, धैर्यवान शिक्षक।

असल में किसी भी युग की बात करें तो पुख्ता तस्वीर बनाने में कामयाब है-- साहित्य। शिरीष पुंज के अनुसार-- "साहित्य काल विशेष की खूबियों के लिए ही बनता है। जब भी पढ़ा जायेगा, उस वक्त को समझने में आसानी देगा। कभी कहानियों में लुभाएगा, तो कभी कवितायों

**२/१०४, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४, मो: ९९२९७-६२५२३*

में रिझाएगा। कथाएं कुछ खोने नहीं देती, चांद को भी जुबान दे देती हैं, मौसम के प्राण बना देती हैं। तभी तो हर युग के इंसान को समझने में मदद मिलती है कथाओं से।

साहित्य और समाज का अटूट रिश्ता है। एक शरीर है तो दूसरा आत्मा। साहित्य प्रेरणास्रोत बनकर आने वाली पीढ़ियों को संस्कारित करने में अहम भूमिका निभाता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के चिंतनानुसार-- "ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।"

साहित्य हमें परिष्कृत करता है, निखारता है, संवारता है, आत्म-मंथन हेतु प्रेरित करता है और साथ ही हमारे हृदय को रूपान्तरित करने की क्षमता भी रखता है।

साहित्य के प्रमुख भेद : साहित्य को काव्य का समानार्थी मानकर काव्य शास्त्र में उसके दो मुख्य भेद माने गए हैं-- १. श्रव्य काव्य २. दृश्य काव्य।

साहित्य मानव के मस्तिष्क का भोजन है, उसकी वैचारिक चेतना के विकास का सूचक और भावों का आदर्श है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इस कारण वह दूसरों के दुख-सुख में शरीक होता है और उन्हें बांटना भी चाहता है। इसी कारण साहित्य में समाहित 'सहित' शब्द का विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः साहित्य की खूबी होनी चाहिए कि वह जीवन को रूपांतरित कर दे, यथा एक शायर के भाव इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं :

तापित को स्निग्ध करे, प्यासे को चैन दे।
सूखे हुए अधरों को, फिर से जो बैन दे।

राष्ट्रीय उत्थान में सहायक : हमारा देश सैकड़ों वर्ष गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा। साहित्यकारों ने भी देश को मुक्त कराने हेतु प्रेरणात्मक वीर रस का संचार कर जोश जगाने वाले साहित्य का सृजन किया, जिससे समता, भाईचारा, प्रेम-भावना, देश-भक्ति का भाव देशवासियों में कूट-कूटकर भर गया। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता-- *"खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।"* तथा माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा'-- *"मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर तुम देना फेंक। मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।"* ऐसी प्रेरणादायक ओजस्वी शैली में प्रस्तुत कविताओं ने राष्ट्र की प्रगति एवं आज़ादी की प्राप्ति में बहुत बड़ा योगदान दिया।

बाल साहित्य का बच्चों के जीवन में स्थान : बाल मन कच्ची मिट्टी की तरह होता है। उसे जिस सांचे में ढालें, ढल जाएगा। अतः उसे सही सांचे में ढालने हेतु सही सांचे की आवश्यकता पड़ेगी और यह सांचा है सही दिशा-निर्देश। यह कहना अतिकथनी न होगी कि सही दिशा-निर्देश मिलता है सत् साहित्य से और यह साहित्य कहानी, कविता, जीवनी, रेखाचित्र, डायरी, यात्रा-वृतांत आदि किसी भी रूप में हो सकता है और किसी भी रूप से बच्चों को प्रेरित कर सकता है।

चिंतकों के अनुसार साहित्य अतीत का दर्पण तथा भावी जीवन का निर्देशक भी है। सच्चा साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। वर्तमान में जहां भौतिकवाद की अंधी दौड़ में हर इंसान आगे निकलने को तत्पर है वहीं नैतिकता का पतन निरंतर हो रहा है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने में हम कतराने लगे हैं। इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि आज सारे विश्व को जिन गुणों की दरकार है वे हमें साहित्य के माध्यम से ही सहजता से उपलब्ध हो सकते हैं।

भारतीय समाज में साहित्य का विशिष्ट

स्थान है और इसकी शुरूआत होती है 'बाल साहित्य' से। बच्चे के जन्म के साथ ही बधाई गीत और फिर दादी, नानी, मां आदि द्वारा लोरी गाकर बच्चे को सुलाना, विशेष अंदाज से जगाना, खिलाना-पिलाना आदि क्रियाएं निरंतर चलती रहती हैं। स्वाभाविक रूप से चलती ये क्रियाएं बाल मन पर जादुई प्रभाव डालती हैं। रोते बच्चे को चुप करवाने की शक्ति भी इन्हीं में समाहित है। यही है बच्चे की पहली पाठशाला जो उत्तरोत्तर विकास पाती हुई कहानी रूप में विकसित होकर बच्चों को अज्ञान से ज्ञान की ओर अग्रसर करती है।

गुरबाणी आशयानुसार कहानी के महत्त्व के बारे में तीसरे पातशाह श्री गुरु अमरदास जी का पावन फरमान बड़ा सटीक है :

बाबाणीआ कहाणीआ पुत सपुत करेनि ॥
जि सतिगुर भावै सु मंनि लैनि सेई करम करेनि ॥
जाइ पुछहु सिम्रिति सासत बिआस सुक नारद बचन सभ स्रिसटि करेनि ॥
सचै लाइ सचि लगे सदा सचु समालेनि ॥
नानक आए से परवाणु भए जि सगले कुल तारेनि ॥१॥ *(पन्ना ९५१)*

जहां सामाजिक एवं पारिवारिक रूप से कहानी का विशिष्ट स्थान है वहीं साहित्यिक रूप में भी यह संप्रेषण का शक्तिशाली माध्यम है। हमारे गुरु साहिबान, देश-भक्तों, महापुरुषों, शूरवीरों की जीवनियां किसी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में समर्थ हैं; एकता, अखंडता, देश-प्रेम, विश्वकुटुंबकम्-भाव, त्याग, बलिदान के अनुपम संदेश देती हैं; सूरत से अधिक सीरत को संवारने को प्रेरित करती हैं।

पग-पग पर बाल-मन को प्रेरित करते गीत और कहानियां बच्चों के मन को अक्सर देश-प्रेम के रंग में सराबोर कर जाते हैं, जैसा कि निम्न पंक्तियां हैं :

इंसाफ की डगर पर, बच्चो दिखाओ चल के,
यह देश है तुम्हारा, नेता तुम्हीं हो कल के।

अनेकता में एकता का भाव दृढ़ करवाती, बाल-मन को एकता के सूत्र में पिरोती ये काव्य पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

हिंद देश के निवासी सब जन एक हैं।
रंग, रूप, वेष, भाषा, चाहे अनेक हैं।

यह भाव बाल्यकाल में ही अगर धार्मिक शिक्षा, नैतिकता के रूप में दृश्य या काव्य-- गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, जीवन-वृतांत, जिस भी रूप में उपलब्ध करवा सकें, बच्चों को राष्ट्रीय एकता-अखंडता की रक्षा हेतु प्रहरी बनाया जा सकता है, जो अन्याय, शोषण, भ्रष्टाचार का विनाश करने में महती भूमिका अदा कर सकते हैं और पुन: भारत को विश्व में गौरवशाली स्थान का अधिकारी बना सकते हैं।

साहित्य रचना का उद्देश्य मानव समाज का हित-चिंतन करना तथा उसकी चेतना का पोषण करना होता है। साहित्य की कसौटी उपयोगिता है। हम अपने राष्ट्रीय इतिहास से अपने देश की गरिमा, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति, आदर्शों, रीति-रिवाज़ों एवं विचारों से परिचित होते हैं। भारत-भूमि रत्नगर्भा है। इसने समय-समय पर ऐसे पीरों-पैगंबरों, ऋषियों-मुनियों, देश-भक्तों को जन्म दिया है, जिन्होंने तन-मन-धन सर्वस्व देश-धर्म हित कुर्बान कर दिया। उनकी गौरवमयी गाथाएं श्रवण कर लाखों बच्चे देश-धर्म हित सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु तैयार हो गये।

चरित्र-निर्माण में सहायक : चरित्र-निर्माण की बात करें तो इसमें अहम योगदान धार्मिक साहित्य का आता है। सिक्ख धर्म की बात करें

तो इसमें 'गुरमति साहित्य' के नाम से भारी मात्रा में बाल साहित्य भरा पड़ा है। सिक्ख इतिहास से सम्बंधित साखियां, जीवन-प्रसंग, सचित्र घटना-वृत्त के अलावा अनेक प्रकार से गद्य व पद्य रूप में धार्मिक साहित्य उपलब्ध है। यह साहित्य बच्चों के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सदा सफल है, बेशर्ते कि कोई इसका पठन-पाठन कर उसे अपने जीवन-व्यवहार में लाए।

हम शुरूआत करें सर्वधर्म समन्वय के प्रतीक श्री गुरु नानक देव जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से, जिन्हें हर मज़हब के लोग सिज़दा करते हैं। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण, संगत और पंगत के सिद्धांत के साथ-साथ सर्वस्व में ईश्वर की ज्योति को पहचानने का उद्घोष विश्व-कल्याण की आदर्शमयी सोच को दृढ़ करवाता है। बच्चों के हृदय में उनकी जीवन-साखियां श्रद्धा-भावना के साथ-साथ प्रेरणा-स्रोत बनकर उनके जीवन को सफल बनाती हैं। अगर हम बात करें उन मनन करने वाले त्यागियों-बलिदानियों की, जिन्होंने बंद-बंद कटवाकर, खोपड़ियां उतरवाकर आरों से बदन चिरवाकर, देगों में उबलकर, रूई में लिपटकर-जलकर, हाथियों के पैरों से कुचलकर, चरखड़ियों पर चढ़कर देश-धर्म की रक्षार्थ जुल्मों-सितम का नाश, उनके लोमहर्षक इतिहास को सुनकर बच्चों में भी देश-धर्म की रक्षा के मार्ग पर चलने का चाव पैदा होता है।

कोई मां अपने बच्चे के प्यारे केशों को संवारते हुए, उसे भाई तारू सिंघ की सचित्र जीवनी वाली पुस्तिका पढ़ने को देकर जब भाई जी के जीवन के बारे में बताती है कि किस प्रकार उन्होंने खोपड़ी उतरवानी स्वीकार कर ली लेकिन केशों को कत्ल नहीं होने दिया, तो बच्चा यह गौरवमयी गाथा सुनकर स्वाभाविक रूप से केशों की कद्र-कीमत समझेगा और उसे अपने महान गुरु की प्यारी निशानी समझकर जी-जान से उनकी सार-संभाल करेगा।

नवम् पातशाह श्री गुरु तेग बहादर साहिब की दीन-दुखियों की रक्षा हेतु दिल्ली की चांदनी चौक में बलिदान की साखी बच्चों के हृदय में मानवता की रक्षार्थ त्याग-बलिदान के जज़्बात भरेगी। अमृत के दाते, सरवंश के दानी, संत-सिपाही, महान दार्शनिक श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने इतिहास की विकट परिस्थितियों, मुगलों के शासन-काल में दीन-हीन हुई भारतीय जनता को अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से अवगत करवाना समतावादी समाज की कल्पना, सत्य मार्ग पर चलते हुए किया प्रत्येक कार्य ईश्वरीय कार्य है, यह भाव दृढ़ करवाने हेतु "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फ़तहि" का उद्घोष आज भी तथा रहती दुनिया तक बच्चों के कोमल मन में क्रान्ति के बीज बोने में सक्षम है। उनकी प्रबल इच्छा-शक्ति को बयान करते उनके ये वचन बच्चों में सहज ही वीर रस का संचार कर सकते हैं : *"सवा लाख से एक लड़ाऊं। चिड़िओं से मैं बाज तुड़ाऊं। तबै गोबिंद सिंघ नाम कहाऊं।"*

यही नहीं, आत्म-रक्षा का नियम, जो कानून में भी वर्णित है, की विचारधारा को सामने रखकर जुल्मी औरंगजेब को 'जफ़रनामा' (जीत की चिट्ठी) लिखकर उसमें स्पष्ट करना कि जब शांति के सारे उपाय असफल हो जाएं तो तलवार उठाना जायज है, यथा :

चु कार अज़ हमह हीलते दर गुज़शत ॥
हलालसतु बुरदन ब शमशीर दसत ॥

इसी संदर्भ में धन्य माता गुजरी जी का ज़िक्र विशेष उल्लेखनीय है जो ठंडे बुर्ज में अपने

दो मासूम पोतों के साथ कैद रहीं। सुबह होते ही कचहरी में पेश होने के आदेश से पूर्व ही माता गुजरी जी ने उन मासूम हृदयों में देश-धर्म हित कुर्बान होने के जज़बात ठूंस-ठूंसकर भर दिये। इस संदर्भ में काव्य रूप में एक शायर की सुंदर अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है :

सूबे दी कचिहरी जाके फतेह बोलिओ !
डोल जाए सुमेर, तुसीं ना वे डोलिओ !
दादे वांगू झल्लिओ तसीहे जिंद-जान उत्ते,
कि दादा जांदिआं नूं ही गल नाल लाए।
लग दाग ना धरम नूं जाए।
वड्डे मेरे लाडले अजीत ते जुझार होए।
आपणे धरम तों हस्स के निसार होए।
छोटे मेरे लाडले निशानी मेरी आखरी ने,
होणा कत्ल नूं इहनां वी पराए।
लग दाग न धरम नूं जाए।
सुबह होई लाला नूं जल्लाद लैण आ गिआ।
सारी सरहंद विच संनाटा जिहा छा गिआ।
माता जी दे चेहरे 'ते इलाही नूर जापदा सी,
उह जांदिआं नूं इंज समझाए।
लग दाग न धरम नूं जाए।

यह कहना अतिकथनी न होगी कि बाल साहित्य का बच्चों के जीवन में बहुत बड़ा स्थान है। इसी गौरवशाली बलिदान पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करती ये काव्य-पंक्तियां हैं :

जिस कुल जाति कौम के बच्चे दे सकते हैं यूं बलिदान।
उसका वर्तमान कुछ भी हो, भविष्य है महा महान।

आज स्वार्थ, मोह-माया की अंधी दौड़ में आगे निकल जाने की होड़, ह्रास होती अमूल्य संस्कृति, विघटित होते मानव-मूल्यों को बचाने का सबसे कारगार उपाय है बच्चों में नैतिकता, सदाचार, देश-प्रेम की भावना तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण का संचार करना। इसके लिए धार्मिक शिक्षा तथा अपने विलक्षण इतिहास से अवगत करवाने हेतु बाल साहित्य, चित्र-कथाओं, गीतों, कविताओं किसी भी माध्यम द्वारा बच्चों के मानस पटल पर अंकित करने का उद्यम करके उन्हें इंसानियत के महान गुणों एवं जज़बातों से भरकर विश्व-कल्याण में विलक्षण योगदान दिया जा सकता है। 

गुरुपर्वों एवं ऐतिहासिक दिवसों का महत्त्व . . . *(पृष्ठ ४१ का शेष)*

को पता था कि धर्म क्या है और उसका मोल क्या है, इसलिए वे धर्म पर जान न्यौछावर करने में जरा भी नहीं हिचके। उन्होंने कौम के उज्जवल भविष्य का निर्माण किया जिससे आज हम अपने सिक्ख होने पर गर्व कर सकते हैं। हमें भविष्य में चाहिए बाबा ज़ोरावर सिंघ और बाबा फ़तहि सिंघ के समान आदर्शवादी बच्चे, जो अपने विकारों को दफन करके, सद्गुणों को शीर्ष पर रखकर सच के पहरेदार बन सकें। ऐसा तभी होगा जब गुरसिक्ख माता-पिता अपने बच्चों की पहचान गुरु-घर और गुरु-शबद की राह से करायेंगे तथा सिक्ख इतिहास को सामने रखकर कराएंगे।

जब घर के बच्चे बड़ों से पहले तैयार होकर गुरुपर्व में जाने के लिए खड़े हो जायेंगे; जब वे अपने अन्य दोस्तों को बता सकेंगे कि यह पर्व क्यों मनाया जा रहा है और घर आकर वहां सुने गये शबद-कीर्तन को गुनगुनायेंगे, वह दिन खालसा पंथ की चढ़दी कला का वास्तविक दिन होगा।



बच्चों के प्रति अभिभावकों के कर्त्तव्य

*-डॉ. आशा अनेजा**

अपनी मृदु मुस्कान से संसार रूपी उपवन को महकाने वाले, माता-पिता के भविष्य की आशा को जीवित रखने वाले, घर-आंगन को किलकारियों से भरने वाले, दादा-दादी, नाना-नानी की आंखों में खुशी का दीप जलाने और उन्हें घोड़ा बनाने वाले बच्चों की इस संसार में क्या अहमियत है उसे किसी को भी बताने की आवश्यकता नहीं है। इन फूल रूपी बच्चों से ही जीवन की बगिया महकती है, रोशन होती है और उनके भविष्य के प्रति सपने बंधते हैं। हर माता-पिता यानि बच्चे के अभिभावक की कमाई और जीवन दोनों का अधिकांश हिस्सा इन्हीं को संवारने, सजाने और काबिल बनाने में लग जाता है। हर माता-पिता की पूरी शक्ति, पूरा ध्यान और पूरा प्यार बच्चे ही तो खींचते हैं। आंखों के ये तारे, ये राजदुलारे कितने प्रिय होते हैं कि इनकी ज़रा-सी तकलीफ घर के सभी बड़ों की नींद उड़ा देती है। संसार के समस्त प्राणियों को अपने बच्चे प्रिय हैं। पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं में कोई ऐसा नहीं जिसे अपना बच्चा न प्रिय हो। फिर सोचने-समझने की शक्ति रखने वाला मानव तो बच्चे के साथ अपना भविष्य जुड़ा देखता है, वह कैसे उसे प्यार न करे?

बच्चे के पैदा होते ही अभिभावक बच्चे के बड़े होने, अच्छा इंसान बनने तथा उसके अच्छी जगह स्थापित होने की उम्मीद में जीने लगते हैं। 'मेरा बच्चा डॉक्टर बनेगा', 'मेरा बच्चा इंजीनियर बनेगा', 'मेरा बच्चा सिविल सर्विस की परीक्षा में अव्वल रहेगा' यही अनका एकमात्र सपना हो जाता है और इस सपने को सार्थक करने में वे कोई कसर नहीं छोड़ते। दुनिया का कोई भी माता-पिता ऐसा नहीं जिसने कभी रत्ती भर सोचा हो कि मेरा बच्चा बुरी संगत में पड़े, आवारा घूमे, पढ़ाई-लिखाई न करे, बड़ा ऑफिसर न बने, नशा करे, चोरी करे, डकैती करे, जेल काटे, पर अफसोस, फिर भी यह सब होता है। समाचार-पत्रों की सुर्खियां हमें रोज़ सूचना देती हैं, टी. वी. के समाचार हमें रोज़ बताते हैं कि किस तरह मार-काट हो रही है, राह चलते लोगों से उनके पर्स, नकदी और सोने के जेवर खींचे जा रहे हैं; प्रेम विवाह के लिए अनुमति न मिलने या नशे के लिए पैसे न मिलने पर बच्चे कैसे माता-पिता की जान लेने पर उतारू हो जाते हैं; नशे में धुत किशोर वय के बच्चे कैसी असभ्य हरकतें-- लड़कियों को छेड़ना या बलात्कार आदि की चेष्टा करते हैं; कई शौक के लिए असंतुलित ड्राइविंग कर दुर्घटनाओं का कारण बन जाते हैं। बाल सुधार गृह इन्हीं बच्चों से भरे पड़े हैं जो कानून की नज़र में किसी न किसी बाल अपराध से जुड़े होते हैं।

विचारणीय बात तो यह है कि अगर यह सब कुछ माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी यानि बच्चों को पालने वाले अभिभावकों ने चाहा ही नहीं तो फिर यह सब कुछ हुआ कैसे? कौन

**३०६/१, खुड्ड मोहल्ला, ओल्ड सिविल अस्पताल रोड, लुधियाना-१४१००८, मो. ९४१७९-७७२००*

ले गया उनके प्रिय बच्चों को उस दलदल में जहां से वे चाहते हुए भी निकल नहीं पाते? जो नन्हे फूलों के समान खुशबू विकीर्ण करने वाले थे वे समाज के लिए कांटे कैसे बन गये?

यह सर्वविदित है कि जिस समाज के बच्चे बलशाली, शिक्षित, नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान रखने वाले, बड़ों का आदर करने वाले, अपने धार्मिक ग्रंथों को पूजने वाले होंगे, वही समाज उत्तम होगा और वही राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। यह सत्य है कि जो अभिभावक अपने बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास तथा निर्माण सही दिशा में करते हैं, वे न सिर्फ अपने परिवार का बल्कि अपने समाज का और अपने राष्ट्र का भी हित करते हैं। बच्चों का मस्तिष्क चुंबक के समान होता है, इसी कारण हर बात को ग्रहण करने की शक्ति भी उनमें अधिक होती है। वे अभिभावकों द्वारा की जा रही हर बात, हर हरकत और हर भाव को ध्यान से देखते-समझते हैं और ग्रहण करते हैं। अभिप्राय यह हुआ कि बच्चों के सही पोषण में बड़ों का, परिवार-जनों का और शिक्षकों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अगर बच्चे बिगड़ते हैं, परिवार के कलंक का कारण बनते हैं, समाज के लिए असामाजिक तत्त्व बनते हैं और कानून की नज़रों में अपराधी बनते हैं तो इसके लिए वे अकेले जिम्मेदार नहीं होते। यह जिम्मेदारी उतनी ही उन अभिभावकों की भी होती है जो बच्चों के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि बच्चों के सही विकास के लिए उन्हें उचित वातावरण, मार्गदर्शन तथा प्रेम मिलना चाहिए और इनकी पूर्ति करते हैं अभिभावक। अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों को पालते समय कुछ बातों का विशेष तौर पर ध्यान रखें ताकि उनके परिवार की बगिया की महक से समाज और देश भी महके। माता-पिता गर्व और सम्मान से कह सकें कि यह बच्चा (बिटा या बेटी) मेरा है। तो आइये, अब थोड़ा-सा ध्यान उन बिंदुओं पर केंद्रित करें जिन्हें अभिभावकों को नज़रअंदाज नहीं करना है :

* माता-पिता और शिक्षक बच्चों के लिए ऐसा वातावरण जुटाने में सहायक हों जिससे उनका व्यक्तित्व दबे नहीं वरन उसका पूरा-पूरा विकास हो।

* बच्चों का अपना स्वतंत्र जीवंत व्यक्तित्व होता है। उनके साथ भी प्यार और आदर का व्यवहार होना चाहिए।

* बच्चे बड़ों का प्यार प्राप्त करके अपने आप को सुरक्षित महसूस करते हैं। जरूरत से ज्यादा प्रेम उन्हें बिगाड़ देगा, यह सोचकर अभिभावक ऐसा न करें कि अपना स्वाभाविक प्रेम भी बच्चे पर प्रकट न करें।

* बच्चे संस्कारयुक्त वातावरण में, मां के प्रेम की उष्मा के साथ, हंसते-हंसते अपनी दिनचर्या के बारे में बताते हुए सहजभाव से भोजन करें तो उनका चित्त शांत होता है।

* बच्चे ज्यादातर वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा व्यवहार वो अपने बड़ों को करते देखते हैं। इसीलिए हम स्वयं भी वैसा ही व्यवहार करें जिसकी हम अपने बच्चे से अपेक्षा रखते हैं।

* बच्चे के मन में यह विचार पैदा न होने दें कि हम बड़े हैं इसलिए हम तुम्हें चीजें दिला सकते हैं, निर्णय ले सकते हैं, तुम यह निर्णय ले ही नहीं सकते। कभी-कभी स्थिति को समझाने के बाद उन्हें भी निर्णय लेने का मौका दीजिए। बच्चे पर हकूमत चलाने से बेहतर है उनका दोस्त बनना।

* माता-पिता को बच्चों के सामने न तो

लड़ना-झगड़ना चाहिए और न एक दूसरे का विरोध करना चाहिए।

* बच्चों की उपस्थिति में मां को उनके पिता के सामने बच्चों के खिलाफ़ शिकायतें और उलाहने नहीं करने चाहिए। मां अगर बच्चों को अपने पास बिठाकर खुद ही समझा दे तो अधिक उचित है। एक कहावत है-- "औंस भर समझाना सेर भर मार के बराबर होता है।"

* बच्चों की जो अच्छाइयां हैं, यदि अभिभावक उसकी कद्र और तारीफ करते रहेंगे, तो उनकी अच्छाइयां बराबर बढ़ती रहेंगी। इसके विपरीत यदि उनकी कमज़ोरियों पर ज़ोर देते रहेंगे, उन्हें उलाहने देते रहेंगे, डांटते रहेंगे तो उनकी कमज़ोरियां मज़बूत होती चली जाएंगी तथा वे ढीठ हो जाएंगे।

* बच्चों के मन में किसी प्रकार का अंधविश्वास पैदा न होने दें। अंधविश्वास बच्चों को डरपोक तथा वहमी बना देता है। अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि उन्हें इस तरह की शिक्षा दें कि बच्चे वहमों, भ्रमों से दूर रहें तथा तर्कशील, विचारशील एवं विवेकवान बनें।

* प्रयोग और अनुभव के द्वारा बच्चों के चरित्र का विकास होता है। बच्चों को अन्वेषण करने का मौका देना चाहिए। गलतियों और जिज्ञासाओं के लिए उसे सज़ा देना ठीक नहीं। कभी-कभी उनकी रुचि और मर्जी के अनुसार काम करने देना चाहिए। उनके अच्छे कामों के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी करना चाहिए।

* अभिभावकों को चाहिए कि छोटी-छोटी बातों के लिए बच्चों को टोके नहीं। ऐसा करने से अभिभावक बच्चों के सामने अपना विश्वास खो देंगे। भय के मारे बच्चे कभी भी इन्हें अपनी निजी बातें नहीं बताएंगे और उस गलत संगत में पड़ेंगे जहां से उन्हें 'सांत्वना' मिलती होगी।

* बच्चों को शिक्षा और शिक्षक के प्रति श्रद्धा-भाव रखना सिखाएं। उन्हें बताएं कि शिक्षा की रोशनी ही उनके जीवन की राह रोशन कर सकती है। शिक्षा के साथ-साथ उसे विद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भाग लेने के लिए प्रेरित करें, जैसे- नाटक, संगीत, प्रहसन, चित्रकारी, फोटोग्राफी, वेशभूषा, मेंहदी-सज्जा, रंगोली सजाना आदि।

* बच्चों को धर्म के बारे में बताते हुए उन्हें धार्मिक शिक्षा देते रहना चाहिए। धर्म ही जीवन को सुंदर व चरित्रवान बनाने का मुख्य आधार है। इससे हमारे जीवन में नैतिक तथा सदाचारक गुणों का विकास होता है।

* बच्चों को संसार के वीर पुरुषों और महान व्यक्तियों की कथाएं सुनाकर उनमें धैर्य तथा वीरोचित भावनाओं का संचार करना चाहिए। उन्हें शहीदों, चारों साहिबजादों के साथ-साथ श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी, राजा हरिश्चंद्र, सम्राट अशोक, स्वामी विवेकानंद तथा संत फ्रेंसिस की कथाएं सुनानी चाहिए ताकि उनमें शुभ गुणों का विकास हो सके।

* बच्चों में देश-प्रेम का जज़्बा जगाने के साथ-साथ उन्हें समाज-कल्याण के कार्यों में संलग्न रहने को प्रेरित करना चाहिए।

* बड़े सारे तनावों से एक बच्चा भी गुजरता है। कभी-कभी वह दबाव अधिक महसूस करता है। अचानक गलत कार्य के हो जाने से, परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर अभिभावकों से डर जाता है और तनावग्रस्त होकर कई बार अविवेकशील निर्णय ले बैठता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो इसलिए बच्चों को आशावादी बनायें। धैर्य से उनकी सारी बातों को सुनें तथा उनसे नाराज़ होने के स्थान पर उन्हें समझाएं।

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

संयुक्त परिवार-प्रणाली और बच्चे

-डॉ परमजीत कौर*

दया, धर्म, सदाचार, सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, सेवा आदि भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व हैं। इन्हीं गुणों से भारतीयता की पहचान होती है। यही गुण संयुक्त परिवार की सफलता के आधार होते हैं। संयुक्त परिवार में बच्चा दादा-दादी, बुआ, चाचा-चाची की छत्र-छाया में रहता हुआ दादा-दादी से धर्म की भावना, त्याग की गरिमा, सेवा की महिमा तथा सहनशीलता का पाठ पढ़ता है। वह कठिन समय में धारण किए गए धैर्य से प्रभावित होता है, क्षमा करना सीखता है तथा सभी सदस्यों की कर्त्तव्य-परायणता से प्रेरित होकर अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है।

आज संयुक्त परिवार बहुत कम रह गये हैं। आर्थिक उन्नति अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए घर-परिवार को छोड़कर एकाकी जीवन व्यतीत करने का प्रचलन बढ़ गया है। पति-पत्नी अपने बच्चों के साथ अलग परिवार बसाने में ही अपना सुख तथा कल्याण समझने लगे हैं। संयुक्त परिवारों के टूटने के कारण बच्चों पर पड़ रहा दुष्प्रभाव चिंता का विषय है।

आज नारी केवल जननी, पत्नी तथा गृहसंचालिका ही नहीं रही, उसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत हो गया है। बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए वह सारा दिन घर पर नहीं रहती। बच्चों को संयुक्त करने का, अच्छे संस्कार देने का उसके पास समय ही नहीं है। संयुक्त परिवारों के टूट जाने के कारण बच्चे या तो शिशु-विद्यालयों में पलते हैं या घर में आया-नौकरानी के पास रहते हैं। माता-पिता के प्यार से वंचित कुछ बच्चे आत्म-केंद्रित हो जाते हैं तो कुछ उद्दंड तथा अनुशासनहीन। बड़े होकर भी उनका यह स्वभाव बना रहता है। आजकल कम्प्यूटर का युग है। स्कूल से आकर बच्चे कम्प्यूटर को अपना साथी बना लेते हैं या टेलीविज़न के आगे बैठे रहते हैं। परस्पर प्रेम की भावना से अनभिज्ञ ऐसे बच्चे बड़ों का आदर नहीं कर पाते। विद्यालय तथा महाविद्यालय में भी वे अध्यापकों को वो सम्मान नहीं दे पाते जो सम्मान संयुक्त परिवार में पले-बढ़े बच्चे देते हैं।

घर ही जीवन की प्रथम पाठशाला होती है। घर में ही बच्चा रिश्तों का मतलब समझता है, स्वार्थ-त्याग की शिक्षा लेता है। माता-पिता के संरक्षण में न रहने वाले बच्चों के जीवन में पारस्परिक रिश्तों का कोई महत्त्व नहीं होता। वे स्वार्थी बन जाते हैं। अपने हित के सामने उन्हें सब कुछ निरर्थक लगता है। यदि अपने माता-पिता के लिए कुछ करते भी हैं तो उसमें कर्त्तव्य-पालन की भावना प्रधान होती है, प्रेम की नहीं।

धर्म जीवन का अभिन्न अंग है। संयुक्त परिवार में दादा-दादी आदि बुज़ुर्ग बच्चों को गुरु साहिबान के जीवन तथा गौरवमयी इतिहास के बारे में छोटी-छोटी रोचक साखियां सुनाकर उन्हें अपने विरसे से परिचित कराते थे तथा उनके हृदय में परमात्मा के प्रति श्रद्धा एवं

*६२०, गली नं १, छोटी लाइन, संतपुरा, यमुनानगर-१३५००१, फोन: ०१७३२-२२४९८८

विश्वास की भावना प्रफुल्लित करते थे। श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के साहिबजादों की साहसपूर्ण गाथायें सुनाकर विषम परिस्थितियों में भी धैर्यपूर्वक, निर्भय होकर, स्वाभिमान से जीने की प्रेरणा देते थे, परंतु आज एकाकी परिवारों में माता-पिता के पास इतना समय ही नहीं है कि वे अपने बच्चों में इन गुणों का संचार कर सकें।

बांटकर खाना गुरमति का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, परंतु एकाकी परिवारों के बच्चों में सदैव लेने की प्रवृत्ति बनी रहती है, देने का स्वभाव उनके व्यक्तित्व में बहुत कम देखने को मिलता है।

संयुक्त परिवारों में मर्यादा का नियंत्रण रहता है। प्रत्येक कार्य को करने से पहले सोचना पड़ता है, सबकी सलाह ली जाती है, सहमति ली जाती है, इसलिए प्रत्येक प्राणी अनुशासन तथा संयम में रहता है। एक-दूसरे की भावनाओं को ध्यान में रखकर ही निर्णय लेने पड़ते हैं। इस तरह एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करने की शिक्षा मिलती है। संयुक्त परिवार के सदस्य आज़ाद रहकर भी एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं। एकल परिवारों के बच्चे इस शिक्षा से वंचित रहते हैं। वे हर बात को अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं तथा स्वाभिमानी के स्थान पर अभिमानी बन जाते हैं।

एकल परिवारों में सदस्यों की संख्या कम होने के कारण बच्चों में विभिन्न स्वभाव के सदस्यों के साथ सामंजस्य बनाने की भावना पैदा नहीं होती, सहनशीलता का अभाव तथा त्याग की भावना से अनभिज्ञता उनमें सामाजिक रिश्तों को पनपने नहीं देती। कई बच्चे एकाकी जीवन से तंग आकर कुसंगत में पड़ जाते हैं तथा दुर्व्यसनों में फंस जाते हैं। वे कई तरह के नशों के चक्रव्यूह में फंसकर जीवन बर्बाद कर लेते हैं।

संयुक्त परिवारों के टूटने से बच्चों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। समय पर घर का ताजा-स्वच्छ पैष्टिक भोजन उपलब्ध न होने के कारण बाहर का भोजन तथा डिब्बाबंद सामग्री का उपयोग किया जाता है। पहले मज़बूरी होती है, धीरे-धीरे आदत बन जाती है, जिसके दुष्प्रभाव के कारण बच्चे छोटी उम्र में ही मोटापा तथा ब्लडप्रेशर जैसे रोगों का शिकार हो जाते हैं। लंबे समय तक कम्प्यूटर तथा टेलीविज़न से चिपके रहने के कारण नेत्र-ज्योति क्षीण होने लगी है। आज छोटी उम्र में चश्मा लगाये बच्चे यहां-वहां देखे जा सकते हैं। आजकल के बच्चों को अपना अकेलापन दूर करने का एक अन्य विकल्प मोबाइल फोन में मिल गया है। इसके पीछे भी यही मुख्य कारण है कि संयुक्त परिवार-प्रणाली खत्म हो रही है और बच्चों को रोकने या डांटने-फटकारने का समय उनके माता-पिता के पास है ही नहीं।

बड़े बुजुर्गों की छत्र-छाया के अभाव में नैतिकता से दूर, नि:स्वार्थ प्रेम से वंचित, एकाधिकार की भावना से ओत-प्रोत बच्चे विदेशी संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होकर पूर्णत: भौतिकवादी बन गये हैं।

आज छात्र-छात्राओं तथा नौजवानों में बढ़ती आत्म-हत्या की प्रवृत्ति का कारण भी कहीं न कहीं संयुक्त परिवार प्रणाली का समाप्त होना ही है। नौजवान माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों के सर्वतोमुखी विकास के लिए अपनी अपेक्षाओं तथा कर्त्तव्य में सामंजस्य बनाकर, परस्पर विरोधाभास को छोड़कर अपने माता-पिता की छत्र-छाया में रहें। अपने अहं तथा थोड़ी-सी स्वार्थ-भावना का त्याग करके संयुक्त परिवारों को टूटने से बचाया जा सकता है।



युवकों की अगुआई में पिता की भूमिका

*-डॉ. साहिब सिंघ अरशी**

आधुनिक युग परिवर्तन का युग कहा जा सकता है। विज्ञान की उन्नति से मनुष्य ने जहां आकाश में उड़ानें भरकर अनेक सफलताएं हासिल की हैं वहीं मनुष्य के दैनिक जीवन में भी परिवर्तन आया देखा जा सकता है। विशेष रूप से आज के नौजवानों में सदाचारक, सभ्याचारक आदि की आ रही कमियों के बारे में सोचना अति आवश्यक हो गया है।

प्राचीन समय में संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी। आदमी कमाई करते थे और स्त्रियां घर तथा बच्चों को संभालती थीं। समझो कि पिता का काम केवल घर-गृहस्थी चलाना होता था। समय में आए परिवर्तन से पारिवारिक रिश्ते भी बिखरने लगे हैं तथा हालात ये हो गए हैं कि संयुक्त परिवार को तिलांजलि मिल रही है और हर कोई माता-पिता, बहन-भाइयों से अलग रहकर ही खुशी महसूस करता है, जिसका हमारे समाज पर घातक प्रभाव पड़ रहा है। यहीं बस नहीं, हमारे समाज का बचपन भी छीना जा रहा है, जो कि गंभीर चिंता का विषय है।

बच्चे को आदमी का पिता कहा जाता है। (**Child is the father of man.**) आज का बच्चा आने वाले भविष्य का वारिस है, इसलिए बच्चे के शारीरिक, मानसिक, सभ्याचारक आदि विकास की तरफ ध्यान देना अति आवश्यक है। इसमें बच्चे के पालन-पोषण तथा जवान होने तक पिता की जिम्मेदारी को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। यहां पर हम पिता की जिम्मेदारियों को युवकों के संदर्भ में रखकर विचार करेंगे।

यह भी कहा जाता है कि 'पिता पर पूत', क्योंकि बच्चा पिता का ही हमशक्ल होता है और उसमें जन्मगत पिता-पुरखी गुण विकसित होते हैं। बच्चे के जन्म से ही उसमें नैतिक एवं आध्यात्मिक गुण प्रफुल्लित करने के लिए माहौल सृजित करना आवश्यक है। यदि पिता सुबह अमृत वेले उठकर नित्त नेम करता है तो जाहिर है कि बच्चों पर विशेषत: युवकों पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। घर का माहौल ही जीवन-निर्माण का पहला कदम कहा जा सकता है। यदि पिता घर के माहौल से आंखें मूंदकर केवल अपने सुख-स्वाद को ही प्राथमिकता देगा तो युवा बच्चों के कोमल मन पर उसका भी प्रभाव पड़ेगा। यदि पिता रोज़ शाम को शराब पीकर या अन्य नशों में चूर होकर घर आएगा तो युवा बच्चे भला कैसे इससे बिना प्रभावित हुए रहेंगे? नशेड़ी पिता का घर में लड़ाई-झगड़ा करना और बच्चों को अनदेखा करना बेचैन माहौल पैदा करता है। इससे जहां घरेलू आर्थिक दशा बिगड़ती है वहीं बच्चों का मानसिक संतुलन भी बिगड़ता है। पिता के परिवार में विशेषत: युवकों के साथ एक दोस्त की भांति रहने से जहां पारिवारिक माहौल सुखमय होता है वहीं आपसी घरेलू प्यार के साथ-साथ पिता-पुत्र के रिश्ते में प्यार बढ़कर और अधिक

***५७०७, माडर्न डुपलेक्स, मनीमाजरा (चंडीगढ़)-१६०१०१, मो ९४६३३-२७५५७*

निकटता पनपने लगती है। दूसरी तरफ, पिता द्वारा बच्चों की अनदेखी करने से कई बार पारिवारिक माहौल गड़बड़ा जाता है।

एक आदर्श पिता का, सर्वगुण-सम्पन्न पिता का युवकों के लिए रोल-मॉडल बनना आवश्यक है। जब पिता सही समय पर घर आकर, अपने युवा बच्चों के साथ बैठकर, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, पहरावे तथा दोस्तों-मित्रों के बारे में पूछेगा तो बच्चों के लिए पिता उनके मित्र की भांति होगा और बच्चे बेझिझक अपनी हर बात पिता के साथ कर सकेंगे। बच्चों को हर समय डांटने-फटकारने की जगह उनके द्वारा किए गए अच्छे कामों की प्रशंसा की जाए। इस प्रकार बच्चे खुद को प्रसन्न एवं सुरक्षित महसूस करेंगे। बच्चों के दैनिक जीवन में आ रही समस्याओं के प्रति जागरूक होना और उनका समाधान करना चाहिए। बच्चों की हर मुश्किल का हल बच्चों की भावनाओं को समझकर ही किया जाना चाहिए।

युवा होने तक बच्चों के कोमल मन पर पड़े प्रभाव, उन्हें मिले संस्कार ज़िंदगी भर उनके साथ रहते हैं। इसके लिए आरंभ से ही इसके बारे में सतर्क होने की आवश्यकता है। जहां बच्चों को जीने के लिए खुशगवार माहौल प्रदान करना चाहिए वहीं उनको उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के बारे में भी जागरूक करना चाहिए, ताकि वे अपनी जिम्मेदारियों एवं कर्त्तव्यों को समझकर नित्यप्रति के कार्यों को सुचारू रूप में कर सकें। इस प्रकार युवक अच्छे गुणों को ग्रहण करके, अच्छे नागरिक बनकर देश के उज्जवल भविष्य के निर्माण में अपना ठोस योगदान डालने के योग्य हो सकेंगे। समाज में विचरने के लिए, समाज को संतुलित एवं स्वस्थ बनाने के लिए आज युवकों को सामाजिक हालात के अनुसार ढालना आवश्यक हो गया है।

पश्चिमी देशों के रहन-सहन तथा चाल-चलन पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि वहां माता-पिता बच्चों के प्रति अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं निभाते। बच्चे माता-पिता से अलग रहकर अपने ढंग-तरीके से ज़िंदगी बिताते हैं। उनको माता-पिता से कोई शिक्षा नहीं मिलती। सरकार ही उनका पालन-पोषण करती है और हर पक्ष से जिम्मेदार होती है। भारतीय माहौल पश्चिमी देशों से बिलकुल भिन्न है। यहां पर औलाद का होना जरूरी समझा जाता है, इसलिए औलाद को कई प्रार्थनाएं और अरदासें करके मांगा जाता है। घर में बच्चे का होना शुभ माना जाता है। सिक्ख घरानों में बच्चे के पैदा होने पर परमात्मा का शुक्राना इस प्रकार शबद पढ़कर किया जाता है :

परमेसरि दिता बंना ॥ दुख रोग का डेरा भंना ॥
(पन्ना ६२७)

भारतीय समाज में बच्चों को तरस-तरस कर लिया जाता है, इसलिए उनके बौद्धिक, मानसिक, भावनात्मक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास की ओर उचित ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इन गुणों की कमी के कारण बच्चों का सर्वपक्षीय विकास रुक जाता है। कई बार बच्चे बड़े होकर कुसंगत में पड़कर गलत मार्ग को अपना लेते हैं। बच्चों में अपनी गलतियां छुपाने की आदत पड़ जाती है। उनको समझाने पर वे अपना अपमान समझते हैं। इस प्रकार रिश्तों में कड़वाहट पैदा होती है। जवानी के खुमार में बच्चे पिता की आज्ञा का पालन न करके लड़ाई-झगड़े पर आमादा हो जाते हैं। गुरु साहिबान ने भी अपनी बाणी में पुत्र को पिता के साथ झगड़ा करने से वर्जित किया है। गुरबाणी का संदेश इस प्रकार है :

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप ॥
जिन के जणे बडीरे तुम हउ तिन सिउ झगरत पाप ॥ (पन्ना १२००)

पिता-पुत्र का रिश्ता मानवीय सम्बंधों से ऊंचा एवं अटूट है जिसे शब्दों के द्वारा बयान नहीं किया जा सकता, केवल आंतरिक भावना से जानने की आवश्यकता है। बच्चा स्वाभाविक रूप से किसी तरह का भी हो, पिता की नज़र में वो सारे दोषों से मुक्त है और प्यार का पात्र है। बच्चा चाहे कितनी भी बड़ी गलती क्यों न करे मगर पिता की नज़र में वो सदा निर्दोष है, क्योंकि पुत्र के गलती करने पर भी पिता क्षमाशील है। गुरबाणी के महावाक्य के अनुसार :

जैसा बालकु भाइ सुभाई लख अपराध कमावै ॥
करि उपदेसु झिड़के बहु भाती बहुड़ि पिता गलि लावै ॥ (पन्ना ६२४)

यह पिता का परोपकार न होकर आंतरिक मनोभावना ही है जिसका सम्बंध हृदय तथा ममता के साथ है। कई बार बच्चों को घर से दूर जाना पड़ता है और उनको घर की याद सताती है। वे दूर होकर घरेलू वातावरण एवं घर के प्यार को तरसते हैं और उदास हो जाते हैं। ऐसी उदाहरण गुरु-इतिहास में भी देखी जा सकती है, जब बाल श्री (गुरु) अरजन देव जी को अपने पिता श्री गुरु रामदास जी से अलग होकर कुछ समय के लिए रिश्तेदारी में लाहौर जाना पड़ा। आप जी की पिता के प्यार के प्रति चाह तथा तड़प चात्रिक की स्वाति बूंद की भांति थी। पल-पल पिता की याद में व्याकुल बाल श्री (गुरु) अरजन देव जी ने पिता को आंतरिक विरह की भावना में मोह भरी चिट्ठियां भेजीं। दूसरी तरफ पिता भी सुपुत्र को दूर भेजकर उदास थे। पिता ने तत्काल ही सुपुत्र को अपने पास बुला लिया।

यहां एक अन्य प्रसंग का बयान भी असंगत नहीं होगा। दशम पातशाह श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के बड़े साहिबजादों-- बाबा अजीत सिंघ तथा बाबा जुझार सिंघ का अपने पिता के प्रति मोह तथा आज्ञा-पालन की लासानी उदाहरण हमारे सामने है, जिन्होंने कच्ची गढ़ी में पिता की आज्ञा का पालन करके शहीदी प्राप्त की तथा छोटे साहिबजादों-- बाबा जोरावर सिंघ व बाबा फ़तहि सिंघ ने पिता के बताये मार्ग पर चलकर शहीदी प्राप्त की, मगर सिक्खी-सिदक को आंच नहीं आने दी। यह सब पिता-पुत्र के आपसी सम्बंधों तथा बचपन में मिले पिता-पुरखी संस्कारों के कारण ही था। आज भी संसार में ऐसे रिश्तों की आवश्यकता है।

बचपन से ही बच्चों के अचेत मन पर पड़े प्रभाव उनके लिए सार्थक हो जाते हैं। बच्चों को सांसारिक बुराइयों से भी सुचेत करना चाहिए। उनके हृदय-पटल पर मानवीय गुण अंकित होने चाहिए, जैसे गुरबाणी का संदेश है :

पर का बुरा न राखहु चीत ॥ (पन्ना ३८६)

यदि बच्चों ने आरंभ से ही यह शिक्षा ग्रहण कर ली तो वे सारे जीवन में गलत काम करने से गुरेज करेंगे। नव-जन्मे बच्चों के बचपन के संस्कार ही उनका भविष्य हैं। पिता का कर्त्तव्य है कि वो अपने जीवन-अनुभव से बच्चों को विशेषतः युवकों को व्यवहारिक नेतृत्व प्रदान करे। आधुनिक समय में पिता-पुत्र के आपसी सम्बंधों में पड़ गई दरार को भरने की आवश्यकता है। इससे युवकों का भविष्य उज्जवल हो सकता है और एक सुनहरी संसार की स्थापना का सपना साकार हुआ देखा जा सकता है।



भारतीय शिक्षण संस्थाओं में बच्चों के संतुलित विकास का अभाव

-डॉ. रामनिवास शर्मा*

बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। अत: बच्चों का वर्तमान जितना बेहतर होगा, देश का भविष्य भी उतना ही उज्जवल होगा। हम देश के प्रति चिंतित होने की दुहाई देते भी हों परंतु बच्चों के वर्तमान के प्रति पूरी तरह उदासीन हैं, खासकर उनके स्वास्थ्य और शिक्षा को लेकर। आज की हमारी शिक्षा-नीति क्या है, यह सरकार और हमारे बुद्धिजीवी ही जानें। हमें तो इतना जरूर दिखाई देता है कि आज स्कूली बस्तों का बोझ इतना बढ़ गया है कि इन नन्हे-मुन्नों के नाजुक कंधे साथ नहीं देते। हर समय स्कूल और पढ़ाई का हौआ इनके दिलो-दिमाग पर इस कद्र सवार रहता है कि नींद में भी बच्चे बड़बड़ाते देखे हैं।[१] मेरी अपनी पोती मेरे लिए प्रत्यक्ष उदाहरण है। सरकारी स्कूलों को अपवाद के रूप में छोड़ भी दिया जाए वहां अन्य प्रकार की समस्याएं हैं। गैर-सरकारी स्कूलों की ओर दृष्टि जाती है तो ऐसा लगता है कि इनका पूरी तरह व्यवसायीकरण हो गया है। पैसा कमाना केंद्र में है शिक्षा हाशिए पर है। इस व्यवसायिक दृष्टि के कारण शिक्षा का स्तर तो गिरा ही है साथ ही गली-महल्लों तक में कुकुरमुत्तों की भांति स्कूल उगने लगे हैं। माता-पिता को बड़े-बड़े सब्जबाग दिखाकर ढाई-तीन साल की उम्र से ही बच्चों को स्कूल में दाख़िल कर लिया जाता है। कभी-कभी व्यस्तता भरी ज़िंदगी के कारण माता-पिता भी राहत की सांस लेते हैं और इस खेल में भागीदारी निभाते हैं लेकिन इसके भावी परिणामों को नहीं जानते। कहते हैं, "समय से पूर्व फल को पकाने की इच्छा उसको बिगाड़ने की रीति है।"

छोटे बच्चों के स्कूलों का पाठ्यक्रम इतना भारी भरकम है कि बच्चों को स्कूल का काम निपटाने से ही फुर्सत नहीं मिलती। थोड़ा-बहुत समय बचता है वह कम्प्यूटर और टी. वी. की भेंट चढ़ जाता है। बच्चों को खेलने का समय ही नहीं मिलता जिससे उनकी शारीरिक क्षमता के बीच का संतुलन बिगड़ना शुरू हो जाता है।

दार्शनिक, चिंतक जे. कृष्णमूर्ति को पूरे विश्व में अब तक के महान धार्मिक शिक्षकों में से एक माना जाता है, लेकिन उन्होंने स्वयं को कभी किसी धर्म, संप्रदाय या देश विशेष से जुड़ा हुआ नहीं माना। जे. कृष्णमूर्ति ने भारत और विदेशों में विद्यालयों की भी स्थापना की, जहां बच्चों को भय और प्रतिस्पर्धा से मुक्त वातावरण में खिलने और विकसित होने का अवसर मिल सके। समय-समय पर वे इन विद्यालयों को पत्र लिखते थे जिनमें वे शिक्षक-शिक्षार्थी के सबंधों, शिक्षा के स्वरूप एवं उद्देश्य तथा अभिभावक की भूमिका, उत्तरदायित्व पर विस्तार से प्रकाश डालते थे। 'स्कूल के नाम पत्र' भाग-१ से कुछ अंश देखिए :

"बहुत छोटे विद्यार्थियों के साथ जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, वो है मनोवैज्ञानिक दबावों और समस्याओं से स्वयं को मुक्त करने में उनकी सहायता करना। अभी इन बच्चों की

*प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला-१४७००२, मो. ९४१७१-७३१६२

पढ़ाई में जटिल और पेचीदा बौद्धिक समस्याएं शामिल हैं। इनके अध्ययन अधिक से अधिक तकनीकी बनते जा रहे हैं। इन्हें अधिक से अधिक दुर्बोध बातें सिखायी जाती हैं। विभिन्न प्रकार का ज्ञान इनके मस्तिष्क पर थोपा जा रहा है। इस प्रकार बिलकुल बचपन से ही इनके मन को संस्कारबद्ध किया जा रहा है। किंतु हमारा सरोकार इस बात से है कि इन छोटे बच्चों की देखभाल और सहायता इस तरह करना है कि उनके पास मनोवैज्ञानिक समस्याएं न हो। वे भय, चिंता, क्रूरता से मुक्त हों। उनके पास उदारता, स्नेह और दूसरों का ख़्याल हों। यह कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, बजाय इसके कि उनके तरुण मस्तिष्क पर ज्ञान का बोझ लाद दिया जाए। इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चा पढ़ना-लिखना इत्यादि सीखे ही नहीं, किंतु महत्त्व मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता का हो न कि ज्ञानार्जन का, यद्यपि यह आवश्यक है। इस स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि बच्चे की जो इच्छा हो उसे करने दिया जाए बल्कि उसे उसकी इच्छाओं और उसकी प्रतिक्रियाओं के स्वरूप को समझने में सहायता दी जाए। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक के पास पर्याप्त अंतर्दृष्टि हो। आखिर आप यही तो चाहते हैं कि विद्यार्थी एक सम्पूर्ण मानव बने, जिसके पास मनोवैज्ञानिक सस्याएं न हों अन्यथा उसे जो भी ज्ञान दिया जाये उसका वह दुरुपयोग ही करेगा।"[२]

अगर हमें अपने बच्चों की ज़रा भी परवाह है तो यह जरूर पूछना चाहिए कि आखिर शिक्षा का अर्थ क्या है? अगर वर्तमान शिक्षा बच्चों को सतत संघर्ष, स्पर्धा और भय में रहने के लिए ही तैयार कर रही है, जैसा कि दुनिया भर में हो रहा है, तो हमें यह निश्चित तौर पर पूछना चाहिए कि इस सबका अर्थ क्या है? जे. कृष्णमूर्ति का कथन है-- "ऐसा लगता है कि संसार भर में जितने माता-पिता हैं उनके पास अपने बच्चों के लिए बहुत कम समय है। पैदा होने के कुछ साल बाद ही वे अपने बच्चों से अलग हो जाते हैं। उनके बहुत कम सम्बंध रह जाते हैं खुद अपने बच्चों के साथ। उनकी खुद की अपनी समस्याएं होती हैं, महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं, जिनको लेकर वे चिंताग्रस्त रहते हैं और उनके बच्चे उन शिक्षकों की दया पर जीते हैं जिन्हें खुद शिक्षा की जरूरत है।"[३] यह शिक्षा वास्तव में कर क्या रही है? क्या यह वाकई मनुष्य और उसके बच्चों की इस तरह मदद कर रही है कि वे अधिक जिम्मेदार, सौम्य और उदार बन सकें। क्या इस शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक विषयों में निपुणता हासिल कर लेना भर तो नहीं है? एक अस्त-व्यस्त संसार में जहां राजनैतिक, सामाजिक और यहां तक कि धार्मिक रूप से इतनी अधिक अराजकता है वहां हमारे स्कूल/विद्यालय, व्यवस्था और प्रज्ञा की शिक्षा के केंद्र होने चाहिए। विद्यालय वह पावन स्थान है जहां सभी मिलकर जीवन की जटिलता और उसकी सरलता के बारे में सीखते हैं।

"शिक्षा संस्थान संगम की तरह ही होते हैं। यहां शिक्षक-छात्र का संगम होता है। ऊंची-ऊंची इमारतें और साधन-सामग्री उतने अहम नहीं होते जितने कि शिक्षक। शिक्षण संस्थान जानकारी बेचने की कोई दुकान नहीं, बल्कि ये तो वो 'तीर्थ-स्थल' हैं, जहां स्नान करने से व्यक्ति की बुद्धि, इच्छा और भावना परिष्कृत होती है और उच्च आचरण का संस्कार मज़बूत बनता है। बौद्धिक जीवन का देवालय हैं शिक्षण संस्थाएं।"[४] डॉ. सर्वपल्ली राधा कृष्णन का कथन है-- "जानकारी ही शिक्षा

नहीं।" आजकल छात्र रटंत विद्या को ही सर्वोपरि मानते हैं, पर डॉ. राधा कृष्णन इसे सही नहीं मानते थे। उनके अनुसार, "रटने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, बल्कि सही मायने में विषय को समझना ही ज्ञानवान बनाता है।"[५]

जब छोटे बच्चों के मस्तिष्क पर इतना भारी भरकम ज्ञान थोपा जाता है, वह भी विदेशी भाषा के माध्यम से, ऐसी स्थिति में वे विषय को कितना समझ पाते हैं? वे रटने का ही सहारा लेते हैं।

डॉ. राधा कृष्णन ने शिक्षकों के लिए भी एक गुरु-मंत्र दिया था। उनका कहना था कि जब तक शिक्षक स्वयं को शिक्षा के प्रति समर्पित नहीं करता और उसे एक मिशन नहीं मान लेता तब तक अच्छी शिक्षा देने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शिक्षक को सिर्फ़ पढ़ा लेने भर से ही अपने कर्त्तव्य को पूरा हुआ नहीं मान लेना चाहिए। शिक्षक को अपने छात्रों का स्नेह और आदर अर्जित करने का गुण भी आना चाहिए। सिर्फ़ शिक्षक होने से ही सम्मान प्राप्त नहीं होता, बल्कि इसे अर्जित करना होता है। शिक्षक का कार्य ज्ञान को प्राप्त कर उसे बांटना मात्र नहीं होता है, बल्कि उसे तो एक दीये की भांति अपने प्रकाश को चहुं ओर प्रसारित करना चाहिए। सादा जीवन उच्च विचार को अपनाना चाहिए।"[६] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि शिक्षक होने का मतलब केवल कुछ जानकारियां आगे बढ़ा देना नहीं है। आज समर्पित शिक्षक बहुत कम हैं। यह हमारे देश का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। आज बहुत कम शिक्षकों को अपनी महती ज़िम्मेदारी का आभास है।

संदर्भ-सूची :

१. 'स्कूलों में १ (एक) लाख फर्जी एडमिशन', दैनिक भास्कर, रविवार, १९ अगस्त, २०१२, रोपड़-पटियाला संस्करण

२. जे. कृष्णमूर्ति, 'स्कूलों के नाम पत्र', भाग-१, पृष्ठ ८७-८८, अनुवादक- हरीश, प्रकाशन- कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट शिक्षा संस्थान, राजघाट फोर्ट, वाराणसी

३. वही, भाग-२, अनुवादक-मुकेश, पृ. ११

४. 'नमन गुरु को!' (शीर्षक) किड्ज़ पेज, दैनिक भास्कर, रविवार, २ सितंबर, २०१२, रोपड़-पटियाला संस्करण

५-६. उपर्युक्त



कविता

मिटा दो अपने अहं को!

अपने अहं को मत बचाओ
मिटा दो इसको!
इसके मिटने से ही मिलता है वो असीम
बीज भी मिटता है तो पौधा बनता है
नदी भी मिटकर ही सागर बनती है।

मत बचाओ अपने अहं को
नहीं तो ओस की बूंद बने रह जाओगे
या फिर कुएं के मेढक रह जाओगे।
अपने अहं को मिटा दो
क्योंकि तुम महासागर हो।



बीबी जसप्रीत कौर जस्सी, मकान नं. ११, सेक्टर १-ए, गुरु ज्ञान विहार, डुगरी, लुधियाना।

विद्यार्थी और अध्यापक का रिश्ता

*-डॉ दादूराम शर्मा**

विद्या का महत्त्व : विद्या मानव में व्यक्तित्व का मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) है। विद्या ज्ञान को कहते हैं, शिक्षा को कहते हैं। भर्तृहरि के शब्दों में, "विद्या मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है, छिपा हुआ धन है, धनार्जन का साधन है, यश और सुख देने वाली है।" शासन द्वारा विद्या की ही कद्र की जाती है, धन की नहीं। विद्याहीन मनुष्य पशु के समान है।

एक अन्य कवि ने विद्या को कल्प लता (जो मांगो वह देने वाली) कहा है। विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हितकर कार्यों में लगाती है, मन की उदासी दूर करके प्रसन्न करती है, व्यवसाय प्रदान करती है और चारों ओर यश का विस्तार करती है।

विद्या सबसे श्रेष्ठ और अद्वितीय धन है, क्योंकि न तो इसे चोर चुरा सकता है, न कोई छीन सकता है, न कोई बंटा सकता है, न यह बोझ बनती है और खर्च करते जाने पर बढ़ती ही जाती है।

एक अन्यत्र व्याख्यान के अनुसार विद्या विनय देती है। 'विनय' का अर्थ है विनम्रता, निरभिमानता। विद्यार्थी को निरभिमान या निरहंकार होना चाहिए। यह विद्यार्थी का प्रमुख गुण और लक्षण है, क्योंकि जो विनम्र होगा, निरभिमान या निरहंकार होगा वही किसी से कुछ सीख सकता है, अध्यापक से विद्या ग्रहण कर सकता है। निरभिमानता जहां विद्या-प्राप्ति के द्वार खोल देती है वहां अभिमान या अहंकार ज्ञान-प्राप्ति के द्वार बंद कर देता है। विद्या प्राप्त करके व्यक्ति में पात्रता (दक्षता, क्षमता, योग्यता, निपुणता, कुशलता) आती है। यह पात्रता ही व्यवहार-कुशलता है, कार्य-क्षमता है, काम में दक्षता है, निपुणता है, जिससे व्यक्ति धन का उपार्जन करता है। भारतीय संस्कृति धर्म से, न्याय से, उचित मार्ग से, वैध रीति से ही धन कमाने की सीख देती है। फिर धर्म से उपार्जित धन को अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के साथ-साथ जन-कल्याण में लगाने की भी प्रेरणा देती है। धर्म के मार्ग से उपार्जित धन कमाने वाले को भी सुख देता है और समाज को भी। अधर्म या अन्याय से, दूसरों के शोषण और छीना-झपटी से कमाया गया धन व्यक्ति को कभी स्थायी सुख नहीं दे सकता, क्योंकि उसके मन में हमेशा यह खटका लगा रहता है कि जिस तरह उसने औरों से धन छीना है उसी तरह कोई उससे भी उसका धन न छीन ले। इस तरह भारत ने विद्या को, शिक्षा को मनुष्य में जीविकोपार्जन की क्षमता उत्पन्न करने वाली बताकर उसे रोज़गार से जोड़ा है। गुरबाणी में भी फरमान है : *"विदिआ वीचारी तां परउपकारी ॥"* अर्थात् विद्या ही मनुष्य को परोपकारी बनाती है और परोपकार वही कर सकता है जिसमें नैतिक गुणों का समावेश हो, वो सद्गुणों से सराबोर हो। जहां तक विद्यार्थी द्वारा विद्या ग्रहण करने की बात है, विद्यार्थी को भी ध्यान-मुद्रा में बैठकर एकाग्रता के साथ अध्यापक से प्राप्त ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। विद्यार्थी को चौकन्नी नींद सोना चाहिए। अध्ययन के लिए सूर्योदय से पहले उठ जाना चाहिए। अल्पाहारी या मिताहारी

**प्राध्यापक, महाराज बाग, भैरोगंज, सिवनी (म. प्र.), मो. ८८७८९-८०४६७*

(सीमित या जितना जरूरी हो उतना ही भोजन करने वाला) होना विद्यार्थी का विशेष लक्षण है। यदि वह भरपेट ठूंस-ठूंसकर खाएगा तो अलसाने लगेगा, उसे नींद आने लगेगी। प्राचीन काल में विद्यार्थी घर से दूर गुरुकुल में रहकर विद्यार्जन करते थे। भारत में नवोदय विद्यालय उसी तर्ज पर खोले गए हैं। घर में परिवार के साथ रहकर पढ़ने में कई कठिनाइयां आती हैं। विद्यार्थी को घर के काम भी करने पड़ते हैं, परिवार की समस्याओं से भी दो-चार होना पड़ता है, परिवार के बीच बैठकर पढ़ना पड़ता है, जिससे चित्त एकाग्र नहीं हो पाता। विरले ही परिवार विद्यार्थी के लिए अलग अध्ययन-कक्ष की व्यवस्था कर पाते हैं। वैसे सभी विद्यार्थियों के लिए गृह-त्यागी होना संभव नहीं है। विद्यार्थी को चाहिए कि वह घर बैठे घर के कामों को अपने दिमाग पर हावी न होने दे।

आज तो विद्यार्थी लंबी आयु तक (उच्च) शिक्षा प्राप्त करते रहते हैं। जो सम्पूर्ण मनोयोग से अपनी पूरी क्षमताओं का उपयोग करते हुए विद्यापार्जन कर लेते हैं, वे जीविका के सुनहरे अवसर पाकर, उच्च पद पाकर, उद्योग-धंधों में निपुण होकर या सयुन्नत कृषक बनकर शेष जीवन परिवार के साथ सुखपूर्वक जीते हैं और राष्ट्र के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। जिन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन को मटरगश्ती में, बदमाशियों में, लापरवाही, प्रमाद-आलस्य और व्यर्थ के कार्यों में गुजार दिया वे ज़िंदगी भर दर-दर की ठोकरें खाते और पछताते रहते हैं। निष्कर्ष यह कि विद्यार्थी जीवन न केवल व्यक्ति के अपितु उसके परिवार के, समाज के, राष्ट्र के और यहां तक कि विश्व के जीवन का भी आधार है, इसलिए विद्यार्थी को अपना प्रत्येक क्षण ज्ञानार्जन में लगाना चाहिए। खेल आदि के द्वारा शरीर को स्वस्थ, चुस्त-दुरुस्त भी रखना चाहिए, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन, बुद्धि का निवास होता है।

इस तरह मानव के व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में विद्या की अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि १. विद्या मार्गदर्शन है, २. यह सदसद्‌विवेक (अच्छे और बुरे का फर्क करके बुराई को छोड़कर अच्छाई को ग्रहण करने की निर्णायक बुद्धि) जगाती है, ३. विद्या संस्कार देती है, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाती है, ४. विद्या केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है अपितु जीवन को कुशलतापूर्वक जीने की कला है, मनुष्य के व्यक्तित्व को संवारने की कसौटी है, जीवन की तैयारी है, जीविकोपार्जन का स्रोत है, ५. यह मानव का सर्वांगीण-- शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास करती है।

विद्यार्थी और अध्यापक : विद्यार्थी राष्ट्र का भविष्य हैं, राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं, भावी राष्ट्रनिर्माता हैं, राष्ट्र के भावी भाग्यविधाता हैं, अतः उनका स्वस्थ, सुशिक्षित होकर संस्कृत तथा परिवार और देश के प्रति समर्पित होना जरूरी है। उनके इस व्यक्तित्व को गढ़ता है शिक्षक, अध्यापक।

अध्यापक विद्या का प्रधान स्रोत है। अध्यापक को हंसमुख, शालीन, शांत, धैर्यवान, निष्पक्ष, क्षमाशील और संवेदनशील होना चाहिए। वह मुस्कराकर छात्रों का स्वागत करे। उसके समक्ष छात्र अपनी समस्याओं को बिना झिझके निडर होकर रख सकें और वह भी शांत भाव से धैर्य के साथ उनकी समस्याओं को सुने, समझे और शालीनता के साथ उनका समाधान प्रस्तुत करे। यदि विद्यार्थी के प्रश्नों का उत्तर उसे तत्काल मालूम न हो तो वह उनका उत्तर खोजकर बतलाने को कहे, किंतु गलत उत्तर न बतलाए। विद्यार्थी उत्तर-प्रत्युत्तर करे तो भी वह अपना आपा (मानसिक संतुलन) न खोए, अपितु धैर्यपूर्वक

उसकी प्रत्येक शंका का समाधान करता चले।

इस संदर्भ में मैं अपने कुछ संस्मरण यहां प्रस्तुत कर रहा हूं :

१. जब मैं ग्यारहवीं कक्षा का छात्र था तब मैंने अपने हिंदी अध्यापक श्री राम कुमार पांडे जी से पूछा था-- "सर, 'शहीद' उर्दू शब्द है, कृप्या इसका हिंदी पर्याय बतालइए।" उन्हें तत्काल उत्तर न सूझा। उन्होंने बाद में बताने को कहा। चार-पांच दिन बाद उन्होंने मुझे कक्षा में सम्बोधित करते हुए कहा-- "दादूराम! तुमने 'शहीद' का हिंदी पर्याय पूछा था न?" मैंने कहा, "जी हां!" उन्होंने बताया-- "बेटे! 'शहीद' का हिंदी पर्याय है-- 'हुतात्मा'।"

२. जनवरी, १९६४ की घटना है। मैं आठवीं कक्षा में संस्कृत पढ़ा रहा था। तभी एक छात्र ने खड़े होकर पूछा-- "सर, 'निब्बू' को संस्कृत में क्या कहते हैं?" मैंने कहा, "बेटे! मुझे मालूम नहीं। मैं तुम्हें कल बतलाऊंगा।" दूसरे दिन मैंने संस्कृत के व्याख्याता श्री हरिमणि मिश्र जी से पूछकर उस छात्र को बतलाया कि 'निब्बू' को संस्कृत में 'निम्बूकम' कहते हैं।

विद्यार्थी के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव शिक्षक का ही पड़ता है। वह उसे अपना आदर्श मानता है। उसके बोलने के ढंग, चलने के ढंग, व्यवहार करने के तौर-तरीके सबका विद्यार्थी अनुकरण करने लगता है।

जैसे ऊंचे स्थान पर खड़ा व्यक्ति नीचे स्थान पर खड़े व्यक्ति को अपनी बराबरी पर लाना चाहे तो इसके दो तरीके हो सकते हैं। पहला तो यह कि वह नीचे खड़े व्यक्ति को हाथ पकड़कर ऊपर खींच ले और दूसरा यह कि वह उसकी बराबरी पर उतरकर उसे सहारा देकर ऊपर चढ़ाए। पहले तरीके में खींचने पर प्रयास विफल हो सकता है या खींचे जाने वाले को चोट भी लग सकती है जबकि दूसरा तरीका पूरी तरह कारगर और निरापद है। अत: अध्यापक को विद्यार्थी को (शिक्षा स्तर में) ऊपर उठाने के लिए इसी ढंग को ही अपनाना चाहिए अर्थात् उसे विद्यार्थी के स्तर पर उतरकर, उसे समुचित ज्ञान देकर अपनी समकक्षता में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। किंतु अफसोस, आज के अधिकांश अध्यापक पहले वाला तरीका अपना रहे हैं। आज प्राथमिक स्तर पर भी हाथ पकड़कर लिखना सिखाने वाले, खेल-खेल में शिक्षा देने वाले कमज़ोर विद्यार्थी को धैर्यपूर्वक, प्रेम से पुचकारकर-दुलारकर पढ़ाने-लिखाने वाले आध्यापक हमें बहुत कम मिलेंगे। अब तो बहुत स्तर पर व्याख्याता ही हमें मिलेंगे। इसलिए छात्रों से आत्मीय सम्बंध न हो पाने से उनका उनसे जुड़ाव ही नहीं हो पाता। छात्रों में अध्यापकों का सम्मान न होने या कम होने का पहला और प्रमुख कारण यही है।

दूसरा कारण है, अध्यापक की अर्थपरक दृष्टि। प्राय: अध्यापक छात्र को मात्र आय का स्रोत मानता है। ट्यूशन पढ़ाने वाले अध्यापकों में यह प्रवृत्ति विशेषत: पाई जाती है। धूमिल के 'मोचीराम' के शब्दों में-- "बाबू जी, मेरी नज़रों में हर आदमी एक जोड़ी जूता है, जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।" उसी तरह प्राय: अध्यापक भी छात्र की जेब देखता है। उसकी समस्याओं या अपेक्षाओं से उसे कोई मतलब नहीं। वह विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने में लगा रहता है। उनके ज्ञान को बढ़ाने और स्तर को ऊंचा उठाने में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं होती। तब ऐसे धनोपासक, खुदगर्ज शिक्षकों को छात्र भला क्यों सम्मान देने लगे?

सन् १९६० तक हमारे यहां चौथी/पांचवीं कक्षा के प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को गुरु जी (आचार्य) अपने घर पर रात में नि:शुल्क पढ़ाते थे। प्राथमिक कक्षा के ऐसे गुरुओं के चरणों में आज भी हमारा सिर श्रद्धा से स्वयंमेव झुक जाता है।

उनके प्रति हमारे मन में उच्च स्तर के अध्यापकों और कॉलेज के प्राध्यापकों से भी अधिक सम्मान का भाव होता है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पाठ्यक्रमपरक है, जिसमें छात्रों के चरित्र-निर्माण का कोई स्थान ही नहीं होता। मसलन, गणित वाला शिक्षक गणित पढ़ाएगा, विज्ञान वाला विज्ञान, भूगोल वाला भूगोल, इतिहास वाला इतिहास आदि। उनमें नैतिक या चरित्र-शिक्षा की कोई गुंजाइश नहीं होती। हां, भाषा के पाठ्यक्रम में चरित्र-निर्माण सम्बंधी सामग्री का समावेश अवश्य कर दिया जाता है, किंतु यह नाकाफी होता है, ऊंट के मुंह में जीरा। वहां भी अध्यापक का ध्यान पाठ्यक्रम पूरा करने में होता है, छात्रों को नैतिक शिक्षा देने में नहीं। यह अध्यापकों का सम्मान कम होने का ही एक कारण है।

जब हमारे समाज में विद्या और ज्ञान का सम्मान, धन और साधन-सम्पन्नता से अधिक था तब गुरुओं का, अध्यापकों का भी सम्मान होता था, किंतु आज भौतिकवाद संस्कृति पर हावी हो गया है और विद्या, ज्ञान व चरित्र का महत्त्व घट गया है। हमारे समाज में अब सम्मान का आधार ऐश्वर्य और साधन-सम्पन्नता हो गया है तथा चरित्र-ज्ञान या विद्या दोयम दर्जे पर हो गए हैं। आज समाज यह मानने लगा है कि पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। ऐसे धनोपासक समाज में अल्प वेतनभोगी और विद्या को धन के बदले बेचने वाले शिक्षकों को विद्यार्थियों से मिलने वाला सम्मान कम हो गया है। अधिकांश अध्यापक निष्पक्ष भी नहीं होते। वे साधन-सम्पन्न व्यक्तियों के बच्चों पर विशेष ध्यान देते हैं और गरीबों के बच्चों की उपेक्षा करते हैं।

कई प्रदेशों में शासन द्वारा अध्यापकों को सबसे कम वेतन पाने वाले 'गुरु जी', फिर शिक्षा कर्मी/संविदा शिक्षक को वर्ग एक, दो और तीन में रखकर पंचायतों के अधीन कर दिया गया है। उन्हें अन्य शासकीय कर्मचारियों से कम वेतन और सुविधाएं दी जाती हैं। महंगे से महंगे प्राइवेट स्कूलों और कॉलेजों में भी अध्यापकों को कम से कम वेतन दिया जाता है। अत: अपनी आय बढ़ाने के लिए उन्हें ट्यूशन पढ़ाना पड़ता है। लगभग सभी प्रदेशों में अध्यापकों की कमोबेश यही स्थिति है। तब शासन और समाज से उपेक्षित, शोषित और तिरस्कृत तथा एक साधारण मज़दूर की तरह अपनी जीविका के लिए जद्दोजहद कर रहे अध्यापकों को विद्यार्थियों से सम्मान कैसे मिलेगा? आधुनिक अर्थपरक और रोज़गारोन्मुख शिक्षा-व्यवस्था में विद्यार्थियों को धन कमाने की मशीन के रूप में तैयार किया जा रहा है, इसलिए वे स्वकेंद्रित, स्वार्थी और माता-पिता, परिवार, शिक्षक, समाज, देश किसी से भी प्रेम न करने वाले और किसी को भी सम्मान न देने वाले बनते जा रहे हैं। अधिक धन कमाने के लिए देश के प्रतिभाशाली युवक विदेशों में पलायन कर रहे हैं और देश को अपने हाल पर छोड़कर विदेशों के विकास में योगदान दे रहे हैं। उनका अपने देश से, समाज से, देश की मिट्टी से प्रेम कम होता जा रहा है। धन और नाम के लोभ में जहां माता-पिता को भी त्याग दिया गया है वहां शिक्षक के सम्मान की बात ठंडी पड़ रही है।

जब तक हमारे समाज का दृष्टिकोण नहीं बदलेगा, वह धन के स्थान पर विद्या, ज्ञान और चरित्र को सम्मान नहीं देगा, नौनिहालों को अपने परिवार, समाज और देश से प्रेम करना नहीं सिखाएगा; जब तक विद्यार्थियों और अध्यापकों में आत्मीय सम्बंध स्थापित नहीं होंगे, तब तक अध्यापकों को मिलने वाले सम्मान में कमी आती ही रहेगी। साक्षरों और शिक्षितों की संख्या तो बढ़ती जाएगी, किंतु चरित्रवान और संस्कार-सम्पन्न नागरिकों की संख्या घटती जाएगी।

संस्कारों का कोई सॉफ्टवेयर नहीं

-प्रो (डॉ) सुधा जितेन्द्र*

भारतीय संस्कृति मानव मूल्यों का सुदृढ़ आधार लेकर मनुष्य के आध्यात्मिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक जीवन का विकास भी करती है और परिष्कार भी। संस्कृति एक ऐसी यात्रा है जो मानव जीवन को बुराइयों और विकृतियों के अंधकार से संशोधित, संस्कारित और परिष्कारित कर प्रकाश की ओर ले जाती है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति कहा है। महाकवि श्री रवींद्रनाथ टैगोर और सर्वपल्ली डॉ राधाकृष्णन ने तो भारतीय संस्कृति को महासमुद्र की संज्ञा दी है। सिक्ख गुरु साहिबान का संपूर्ण जीवन लोक-कल्याण, आध्यात्मिकता, धार्मिकता, विश्व-बंधुत्व, सदाचार, सत्य एवं निष्काम कर्म के सिद्धांतों का जीवंत दस्तावेज़ है। आज हमारे जीवन से, कर्म से उपयुक्त सभी बिंदु शून्य होते जा रहे हैं जिससे भारतीय समाज में विशृंखलता दिखाई देने लगी है। इनमें से सर्वाधिक कुप्रभावित हुआ है हमारा बाल वर्ग। ये बच्चे, जो राष्ट्र का भविष्य हैं, निर्माता हैं, आज दिशाहीन एवं नेतृत्वहीन हो रहे हैं। बच्चे और बचपन पहचान हैं-- मासूमियत की, निश्छलता की, चंचलता की, निरवैरता की, सच्चाई की, भोलेपन की। बच्चे का जीवन एक कोरी सलेट की तरह होता है या यूं कहिए कि बच्चे कच्चे घड़े की मानिंद होते हैं जिस पर जो लिख दिया जाए वह अमिट हो जाता है और उन्हें जिस रूप में ढाला जाए वे उसी रूप में ढल जाते हैं। प्रश्न यह उभरता है कि क्या आज की चकाचौंध भरी भौतिकतावादी दृष्टि ने अभिभावकों, अध्यापकों, पथ-प्रदर्शकों का दृष्टिकोण बदल दिया है जो आज का बचपन तनाव, अकेलेपन, घुटन, कुंठा, हीनता, आत्म-केन्द्रण और धर्म से विमुख हो रहा है?

इतिहास साक्षी है कि नवम पातशाही श्री गुरु तेग बहादर साहिब को बलिदान और आत्मोत्सर्ग के लिए उनके सुपुत्र दसवीं पातशाही श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने ही कहा था और निर्भीकता, निडरता तथा साहस से नौ वर्षीय बाल (दसवीं पातशाही) ने सभी दुविधाओं को दूर करते हुए कहा था कि पिता जी आपसे बढ़कर योग्य शूरवीर और कौन हो सकता है? सिक्ख इतिहास और गुरु साहिबान का जीवन व कर्म इस प्रकार की लोक-कल्याण एवं विश्व-बंधुत्व की घटनाओं से भरा पड़ा है। व्यक्तिगत प्राप्तियों से ऊपर उठकर समष्टिगत चेतना और कल्याण ही सिक्ख पंथ का मूल मंतव्य है और इसी में छिपा है हमारा आज के समाज, विशेषकर बच्चों के लिए संदेश और मार्गदर्शन। त्याग, बलिदान, परोपकार, दया, सत्य, सदाचार, उदारता, भ्रातृभाव-- संभवत: यही वे मानव-मूल्य हैं, संस्कृति के उन्नायक हैं, जो श्री गुरु तेग बहादर साहिब ने अपने सुपुत्र श्री गुरु

*अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, श्री अमृतसर-१४३००१, मो ९८१४८-५१०१०

गोबिंद सिंघ जी के रूप में कूट-कूटकर बीज रूप में रोपित किए थे। उसका परिणाम देखिए कि सुपुत्र के सहयोग व उत्साह से नवम गुरु जी 'हिंद की चादर' कहलाए। भारतीय इतिहास में श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने ही सर्वप्रथम मनुष्य की प्रतिष्ठापना करते हुए कहा था कि "अपने भीतर के 'मनुष्य' को जागृत करोगे तभी तुम्हारा कल्याण होगा।" यह प्रेरणा परतंत्र भारतवासियों में प्राण फूंक गई थी।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी सच्चे संत-सिपाही थे, योद्धा थे, परदुखकातरता से ओत-प्रोत थे; मुगल सलतन से लोहा लेकर भारतवर्ष को आज़ादी की ओर ले जाने वाले थे। इतिहास फिर साक्षी है कि उनके चारों साहिबजादों, जिगर के टुकड़ों में से बड़े साहिबज़ादों ने जंगे-मैदान में बहुत छोटी अवस्था में ही क्रूर हकूमत द्वारा दीवारों में चिनवा दिया गया। गुरु साहिब ने पुनः सिद्ध कर दिया कि कौम का सुख-दुख उनके अपने सुख-दुख से बहुत बड़ा है :

इन पुतरन के सीस पर, वार दीए सुत चार।
चार मुए तो किआ भइआ, जीवत कई हज़ार।

क्या विश्व के इतिहास में भी इस प्रकार का कोई उदाहरण ढूंढने से मिलेगा? इतनी निर्भीकता, इतना साहस, इतना वैराग्य! अगर विश्लेषण करें तो श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी भी बाल अवस्था में ही थे जब उन्होंने अपने पिता-गुरु को दिल्ली की तरफ रवाना किया था। उनके चारों साहिबज़ादे भी बाल अवस्था में ही थे जब वे शहीदियां प्राप्त कर गए थे। दोनों स्थितियों में दिखाई पड़ता है कि दशम गुरु जी तथा उनके साहिबज़ादे भी उन गुणों से भरपूर थे जो देश के सांस्कृतिक उत्थान के लिए आवश्यक थे। उनके अभिभावकों के रूप में पिता-माता-दादा-दादी सभी ने स्वयं अपने जीवन के माध्यम से उन बच्चों को शिक्षा दी थी कि "जीवन के सच्चे मायने क्या हैं?"

वास्तव में आज विज्ञान टेक्नोलॉजी की चकाचौंध से स्तब्ध भौतिकतावादी समाज केवल और केवल अर्थकेंद्रित हो चुका है। जहां पहले जीवन में चार पुरुषार्थ-- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष महत्त्वपूर्ण थे, उनमें संतुलन करते हुए जीवन को आगे बढ़ाने की प्रेरणा और शिक्षा मिलती थी, वहीं आज केवल 'पैसा' ही सब कुछ बन गया है। मीडिया और टेक्नोलॉजी के दनदनाते बुलेट भारतीय समाज की चूलें हिला रहे हैं। बच्चे, जो अनभिज्ञ हैं अच्छाई और बुराई से, उनके सामने वो सब परोसा जा रहा है जो उन्हें अपने राष्ट्र, अपनी कौम, अपने धर्म-- मानव धर्म से दूर ले जा रहा है। बच्चे टी. वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल द्वारा ऐसी भाषा, ऐसी संस्कृति, ऐसे पहनावे, ऐसे खान-पान से परिचित एवं संचालित हो रहे हैं जिनमें 'अपना' कुछ नहीं है। बाज़ारवाद ने आज हर चीज़ को बिकाऊ बना दिया है। हमारा भविष्य, हमारे निर्माता, हमारे बच्चे आज किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चुके हैं, क्योंकि आज संयुक्त परिवार ढूंढने से ही मिलते हैं। एकल परिवार में मां-बाप दोनों के नौकरी करने की मज़बूरी या चाहत में हमारा भविष्य, हमारे बच्चे अकेलेपन का, तनाव का,. भय का शिकार हो रहे हैं। आज कोई बड़ा बुज़ुर्ग उन्हें वे शिक्षाप्रद कहानियां, नैतिक मूल्यों की बारीकियां समझाने के लिए उनके समीप नहीं है। हमारी शिक्षा-नीति ने तो इस वातावरण को और भी धुंधला कर दिया है। आज हमारे बच्चों के सामने कोई आदर्श नहीं है, जिसका अनुगमन वे कर सकें। हम बच्चों

से 'श्रवण कुमार' बनने की आशा कैसे कर सकते हैं, जबकि हमने कभी उन्हें 'श्रवण कुमार' के बारे में बताया ही नहीं। मूल्यों और संस्कारों का संवाहक हमेशा सच्चा साहित्य होता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब तथा अन्य भारतीय धर्म-ग्रंथ हमारे बच्चों में भारतीय सांस्कृति जीवन-मूल्यों का संचार कर सकते हैं, क्योंकि ये ग्रंथ सत्य, अहिंसा, संतोष, मर्यादा, धैर्य और संयम रूपी मूल्यों की अमूल्य निधि हैं।

संसार परिवर्तनशील है, इसलिए हर चीज़ परिवर्तित होती है। किसी भी राष्ट्र की पहचान में संस्कृति और संस्कारों की महत्त्तपूर्ण भूमिका है। सड़ी-गली मान्यताओं का त्याग स्वीकार्य है, लेकिन शाश्वत मूल्यों को नज़रअंदाज करना अपनी ही नींव को खोखला करना है। अगर हमें अपनी भावी पीढ़ी के रूप में बच्चों को सबल और गुणवान बनाना है तो उन्हें ज्ञान रूपी पंख अवश्य लगाने होंगे ताकि वे खुले आसमान में उड़ सकें, किंतु मूल्य एवं संस्कारों रूपी ठोस आधार भी देने होंगे ताकि धरती से उनके पांव मज़बूती से जुड़े रहें। भूलना न होगा कि भौतिकतावादी आज का जीवन हमारे बाहरी विकास के लिए अत्यावश्यक है, किंतु आंतरिक विकास सांस्कृतिक मूल्यों के बिना अधूरा है।



बच्चों के प्रति अभिभावकों के कर्त्तव्य *(पृष्ठ ४९ का शेष)*

* यह हमारी संस्कृति की विशेषता है कि हम अन्य कई देशों से नैतिक मूल्यों में उच्च स्तर रखते हैं। पाश्चात्य संस्कृति में जहां अश्लीलता प्रतिबंधित नहीं है, वहीं भारत में नैतिक शिक्षा और मूल्यों पर बल दिया जाता है। बच्चों को खुलापन अधिक भाता है, इसलिए वे पाश्चात्य संस्कृति की तरफ अधिक आकर्षित होते हैं। उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व करना सिखाना चाहिए।
* अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों की संगत तथा उनकी आदतों पर नज़र रखें। मोबाइल फोन, इंटरनेट का प्रयोग अगर बच्चा कर रहा है तो उस पर विशेष ध्यान रखें। उसके सही उपयोग की जानकारी उसे दें। उसके साथियों के विषय में भी उससे समय-समय पर पूछते रहें।

निष्कर्ष रूप में अभिभावक अगर इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देंगे, बच्चों से मारपीट, क्रोध और गाली-गलौच नहीं करेंगे, मित्रवत् व्यवहार करेंगे तो बच्चे भावात्मक स्तर पर उनसे जुड़े रहेंगे। इसके साथ अभिभावक बच्चों को धर्म की वास्तविक शिक्षा भी देंगे तो बच्चों का चारित्रिक तथा नैतिक विकास होगा। संतों, भक्तों और गुरु साहिबान की अमृत सदृश अमूल्य बाणी निनाद करती पवित्र धारा के समान हमारे पास श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के रूप में सुशोभित है, जिसकी कल-कल बहती धारा सारे कालुष्य को धो देने की सामर्थ्य रखती है। उसका नित्यप्रति पाठ करने की प्रेरणा अगर अभिभावक बच्चों में डालते हैं तो निःसंदेह बाल सुधार गृह और वृद्धाश्रम हमारे समाज के अंग नहीं रहेंगे। बच्चों में सद्गुणों का निर्माण होगा जो हम सबके लिए कल्याणकारी है।



कला और संस्कृति से बच्चे दूर क्यों?

*-प्रो योगेशवर कौर**

भारत एक विशाल देश है। एकता में अनेकता और अनेकता में एकता यहां के संदर्भ में विश्व-विख्यात है। हमारा इतिहास गौरवपूर्ण और उपदेश की दृष्टि से संपन्न रहा है। संस्कृति और कृषि प्रधान भारत के नगर हों या गांव, यहां की सभ्यता अति प्राचीन और इसकी महिमा गरिमामय है। धर्म-धर्मांतरों के होते हुए भी यहां अपने-अपने इष्ट, प्रभु के प्रति पूरी आस्था, निष्ठा और श्रद्धा बनी रहती है। अतीत में हमारे कवियों, लेखकों, विद्वानों ने इसका खूब वर्णन किया है। हमारी विरासत का मूल स्वर गुरमति का ज्ञान है। वयोवृद्ध, प्रौढ़, युवा पीढ़ी और बच्चे सब गुरु के माध्यम से ही प्रभु तक पहुंचते हैं। सिक्ख धर्म के दस गुरु साहिबान ने जो शिक्षा और संस्कार अपनी बाणी, साहित्य, प्रवचन या उपदेशों के द्वारा हम तक पहुंचाए हैं, उसे निष्ठा और श्रद्धा के साथ हम स्वीकार करते, मानते आए हैं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम तो है, लेकिन इसमें भी मर्यादा सर्वोपरि है। युग बदलता है, समाज बदलता है और क्रमशः रूढ़ियों, परंपराओं को त्यागकर हम नवीनतम की खिड़की खोलना चाहते हैं, लेकिन यहां यदि कोई भी आचरण, संस्कार या व्यवहार सीमोचित न हो तो कुछ प्रश्न-चिन्ह स्वतः हमें चुनौती देने लगते हैं।

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद के दौर में पूरा विश्व एक वृहद गांव महसूस हो रहा है। विश्व के विभिन्न देशों ने तकनीक, मीडिया, कम्प्यूटर और मोबाइल क्रांति का जो रूप दिखाया है, उसका आंशिक प्रभाव हमारे देश के बच्चों पर भी पड़ रहा है। फैशन, ग्लैमर, अनास्था या ऐसे कुछ और पहलू भी गिनाए जा सकते हैं, जिन्होंने तात्कालिक रूप से अपना रंग प्रदान किया है। सिक्ख समाज, सिक्ख पंथ एक आदर्श कौम है। यहां हमारे गुरु साहिबान ने नाम-जपना, मिल-बांटकर खाना, किरत (श्रम) करना आदि जो संदेश दिए हैं, उन्हें भावी पीढ़ियां विस्मृत करने लगी हैं। पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़ के साथ भारत के विभिन्न राज्यों और दूसरे देशों से भी सिक्ख समाज के जो परिवार सात समुद्र पार विदेशों में जा बसे हैं, उन्होंने नई चमक-दमक में खुद को ढालने का आंशिक प्रयास किया है, लेकिन वहां भी गुरु-मर्यादा, सेवा-भावना, किरत-कमाई, वंड छकना आदि भावों को दूर नहीं किया, हां, रहन-सहन, आर्थिक स्तर में जरूर परिवर्तन आया है।

हमारे यहां समाज या घर परिवार में हर वर्ग को, हर धर्म के लोगों को भी आज चिंता है कि उनका बहुत कुछ अमूल्य पीछे छूट रहा है। इसी कुछ के खो जाने के भय ने उन्हें आतंकित किया हुआ है, क्योंकि अपनी जड़ों से जुड़े हुए पेड़ ही लहलहाते, फलते-फूलते नज़र आते हैं। पेड़ों की तरह बच्चों को भी ठीक से न सींचा जाए तो वे खाली, खोखले होकर लड़खड़ाने और डगमगाने लगेंगे। एक कवि का कथन है :

मैं किसके हाथ में अपना लहू तलाश करूं
तमाम शहर ने पहने हुए हैं दस्ताने?

इन दस्तानों को उतारकर ही मेल-मिलाप

***२३९, दशमेश इन्कलेव, ढकौली (जीरकपुर)-१६०१०४, ज़िला मोहाली, मो ९४१७३९४८४९*

या भाईचारे का भाव पनपता है। नैतिकता, कला पक्ष, सदाचार व धर्म के प्रति हमारा लगाव कम हो रहा है। हमारी भावी पीढ़ियां इससे फासला रखकर चलने लगी हैं। बाज़ारवाद, मंडीकरण ने आर्थिकता को हम पर हावी कर दिया है और मनुष्य का मशीनीकरण हो गया है। सोचते, गाते, आते-जाते हम मात्र मुद्रा और मौद्रिकता को सामने रखते हैं। यहां शीघ्र अमीर होने की प्रवृत्ति ने व्यक्ति को अंदर से खाली कर दिया है। शायद इसीलिए दुष्यंत कुमार ने लिखा है :

जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।

बच्चों के जीवन से कुछ भी उपयोगी छिनता है या दूर होता है तो हमारा भविष्य संकट में नज़र आता है। आज हमारी शिक्षा-प्रणाली में भी धार्मिक शिक्षा का अभाव है। सरकारी स्कूलों में खास तौर पर धर्म के प्रति लगाव नहीं सिखाया जा रहा, जिससे कला और संस्कृति भी प्रभावित हो रही है। विश्वविद्यालय फैशन, ग्लैमर और शार्टकट की लालसा में पागल हुए जा रहे हैं।

इसका एक कारण इतिहास से अनभिज्ञता भी है। हमारे देश का इतिहास, हमारी कौम का इतिहास और विश्वास, व्यक्ति-व्यक्ति का एहसास, जब तक एक नहीं होगा, हमें उभरने, उठने में कठिनाइयां आती रहेंगी। मानवीय संबंधों में आज जो गिरावट आई है, उस कड़वाहट का असर बच्चों पर बहुत जल्द देखने को मिलता है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन या ऐसे अनेक रिश्तों में जो चिड़चिड़ापन हावी हो रहा है, वह हमें धार्मिकता से दूर ले जा रहा है। आस्थावान होकर निष्ठा रखते हुए हमारे भावी नागरिक आज के बच्चे अपने-अपने घर-परिवार में घुटते माहौल से आतंकित और उसका शिकार हो रहे हैं।

समाज में बड़ों के प्रति आदर-भाव दूर होता जा रहा है। इसके लिए हम बच्चों को नहीं, खुद को जिम्मेदार समझें। आज की पीढ़ी हमारी परंपराओं को आगे ले जाएगी, लेकिन विज्ञान को साथ रखते हुए यह संतुलन बनाए रखें, इसकी खास जरूरत है। टी.वी. कल्चर का प्रभाव बच्चों पर बहुत जल्द और घातक पड़ रहा है। फिल्में, धारावाहिक, नाटक, कार्टून, फैशन-परेड या रियलिटी शो देखते हुए बड़ों के साथ बच्चे प्रश्नाकुल हो उठते हैं। उनकी जिज्ञासा का शमन करने को हमारे पास प्राय: सही समाधान नहीं होता।

हमारे यहां कला, लालित्य, मौलिकता, रचनात्मकता को भी प्राय: उपेक्षित किया गया है। इस दिशा में बच्चों के लिए परिवारों में बहुत कम प्रोत्साहन मिल पाता है कि वे अपनी बहुआयामी प्रतिभा को निखारें और नैतिक बल को समझाते हुए समर्थ सामाजिक कार्यकर्ता बन पाएं। हमारे धार्मिक अगुआ भी बच्चों पर कोई खास प्रभाव नहीं छोड़ पा रहे। जरूरत है कि बच्चों को सब तरफ से नैतिक बल मिले। वे अध्ययन की ओर आकर्षिक हों। यह तभी हो पाएगा, जब माता-पिता अपनी व्यस्तताओं में से समय निकालकर बच्चों के साथ मिल बैठेंगे। संस्कृति और कलाविहीन समाज खोखली दुनिया का प्रतीक है। मानव सभ्यता का विकास सांस्कृतिक पहलुओं के आधार पर ही हुआ करता है। विभिन्न कलाओं के प्रति बालक संसार की दिलचस्पी तब तक नहीं बन पाएगी, जब तक हम अपने-अपने घर परिवार में हो रहा कलात्मक अभिरुचियों का विकास छोटे बच्चों को नहीं दिखाएंगे, क्योंकि तस्वीर बनाने और तस्वीर बनने में बहुत फर्क है। हमें तस्वीर बनना होगा, तभी हमारे बच्चे हमारा अनुकरण कर सकेंगे, क्योंकि हमारी बनी-बनाई तस्वीर उनके काम आएगी।



बच्चों के बौद्धिक एवं शारीरिक विकास सम्बंधी कुछ जरूरी बातें

*-डॉ. हरशिंदर कौर एम. डी.**

"बाजां वालिआ तेरे हौंसले सी,
अक्खां साहमणे पुत्त शहीद करवा दित्ते।
लोकीं लब्भदे ने लाल पत्थरां चों,
ते तूं पत्थरां 'च ही चिणवा दित्ते।"

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के फूलों जैसे लालों की कोई मिसाल नहीं जिन्होंने खेलने-कूदने की उम्र में कौम की खातिर दीवारों में चिने जाने को प्राथमिकता दी थी। जब कोई पांच से आठ वर्षों के बालकों की शारीरिक, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दशा के बारे में जान लेगा तो वह खुद निर्णय ले सकेगा कि उन छोटे बालों (साहिबज़ादों) की शहीदी बेमिसाल क्यों थी? स्मर्ण रहे कि दुनिया के किसी भी अन्य धर्म में ऐसी मिसाल देखने-सुनने को नहीं मिलती।

हमारे बच्चे को खरोंच भी आ जाए तो हम तड़प उठते हैं किंतु बलिहार जाएं साहिबज़ादा फ़तहि सिंघ (आयु पांच वर्ष) तथा साहिबज़ादा ज़ोरावर सिंघ (आयु आठ वर्ष) के जिन्होंने दूध के दांत टूटने से पूर्व अपने आदर्शों की खातिर जीवन की डोर तोड़ने को पहल दी। आखिर कैसी जीवन-घुट्टी मिली होगी इन अलौकिक बालों को?

जिस घर में दादा जी ने देश-धर्म की रक्षा के लिए जान कुर्बान की हो तथा पिता द्वारा नामकरण ही ऐसा हो-- अजीत सिंघ-- जिसको जीता न जा सके, जुझार सिंघ-- जूझने वाला, ज़ोरावर सिंघ-- ज़ोर वाला, बलवान; फ़तहि सिंघ-- फ़तहि, विजय प्राप्त करने वाला, वे बच्चे अलौकिक तो होंगे ही। सरवंश वार देने वाले पिता ने उनको कैसा जिगरा दिया होगा कि मृत्यु को समक्ष देखते हुए तथा नंगी तलवारों की छांव तले भी खौफ़ उनके चेहरे पर नहीं था, बल्कि फख्र से सिर बुलंद करके उन्होंने शहीदियां प्राप्त कीं।

यह बात जानी-पहचानी है कि पांच वर्ष से ज्यादा वर्षों के बच्चे मृत्यु के बारे में पूरी समझ रखने लग जाते हैं व अंधेरे से भी भयभीत होते हैं। डरना इस उम्र के बच्चों में साधारण ही देखने को मिलता है। कुछ ज्यादा अच्छे से समझाने के लिए मैं पांच वर्ष से ऊपर उम्र के बच्चों की मनोदशा तथा उनके दिमागी व शारीरिक बदलाव के बारे में विस्तार से बात करना चाहूंगी।

इस उम्र को बचपन एवं जवानी के मध्य की उम्र माना जाता है। नौ वर्ष की उम्र तक की उम्र वाले बच्चे अभी बचपन की हद पर खड़े गिने जाते हैं, किंतु दस से ग्यारह वर्ष की उम्र को जवानी की दहलीज की ओर उठाया पहला कदम गिना जाता है। तेरह वर्ष की उम्र में शरीर पर जवानी के हस्ताक्षर दिखाई देने शुरू हो जाते हैं।

जितनी भी खोज मनोवैज्ञानिकों ने इस उम्र वाले बच्चों की की है, उसके अनुसार यह तो निश्चित हो चुका है कि इस उम्र का दिमाग तेज़ी के साथ बढ़ता है तथा आठ से नौ वर्ष की उम्र के बच्चों के दिमाग का आकार लगभग बड़ों के दिमाग के आकार के बराबर पहुंच

**२८, प्रीत नगर, लोयर माल, पटियाला-१४७००१, फोन: ०१७५-२२१६७८३*

जाता है। इस उम्र में दिमाग का अग्र हिस्सा (फरंटल लोब) बहुत तेजी से बढ़ता है, जिससे किसी बात को समझने तथा उसको जांचने-परखने की इच्छा तीव्र हो जाती है। इसके कारण बच्चे अपना कोई ठोस फैसला लेने के काबिल हो जाते हैं तथा एक बार अपना लक्ष्य ठानकर फिर उसको पूरा करने के लिए किसी भी हद तक जिद पकड़ सकते हैं। फरंटल लोब के अग्र हिस्से (प्रीफरंटल कॉरटेक्स) में किसी की शख़्सियत को तराशने की सामर्थ्य होती है। फरंटल लोब वाले हिस्से में किसी चोट के कारण या बीमारी के कारण बच्चे की सोच में बिगाड़ पड़ सकता है तथा एकाएक रोने या ऊंचे-ऊंचे से हंसने या घबराहट जैसे लक्षण दिखा सकता है।

जैसे-जैसे दिमाग का अगला हिस्सा बढ़ता जाता है, बच्चा कठिन से कठिन मामले का हल ढूंढने के काबिल हो जाता है। किसी खिलौने की छानबीन करनी या किसी कठिन कम्प्यूटर प्रोग्राम आदि को जल्दी समझने के योग्य हो जाता है।

सात वर्ष की आयु तक पहुंचते ही दिमाग के दोनों हिस्सों (सेरेबर्ल हैमिसफीयर) को जोड़ने वाली कोशिकाएं (कोर्पस कैलोज़म) काफ़ी बढ़ जाती हैं जिससे संदेश भी जल्द दिमाग में पहुंचते हैं तथा उन देखी या सुनी हुई चीजों का हल ढूंढना या गहन सोच (बाल मनों के अनुसार) कर सकने की सामर्थ्य भी आ जाती है।

आसान तरीके से समझने के लिए इतना ही बहुत है कि इस उम्र से पहले बच्चे का संसार सीमित होता है, किंतु दिमाग की वृद्धि से बच्चा इर्द-गिर्द को अच्छी तरह समझने के योग्य हो जाता है तथा दुनियावी तानेबाने को वैज्ञानिक पक्ष से भी जांचने लग जाता है।

इस उम्र में बच्चा खुद काम करना चाहता है तथा बहुत कुछ सीखने के योग्य भी हो जाता है। नाचना, उछलना, कूदना, दौड़ना, वृक्ष पर चढ़ना, खेल में गेंद कैच करना, बेस बॉल, साइकिल, रोलर सकेट, जूडो-कराटे, बैले डांस, जिमनास्टिक, तीर-कमान, तलवार चलाना आदि सब कुछ सिखाया जा सकता है पर शर्त है कि उसताद अच्छा मिल जाए। इस उम्र का सीखा बच्चा बड़ा होकर विश्व स्तर का खिलाड़ी आसानी से बन सकता है।

इस उम्र के बच्चे अपने हाथों के काम भी काफी सफाई से कर सकते हैं तथा उनको हाथों की बारीकी का काम करने की समझ भी आ जाती है, उदाहरणत: कागज़ काटकर सफाई से चिपकाना, लिखना, चित्रकारी करना, रंग भरना, जूते के फीते बांधने, गांठ खोलना, दांत साफ करना, बाल बनाना आदि।

यदि इन बच्चों के सीखने के शौक को कोई समझकर अध्यापक समझ सके तो ये प्यानो, बंसरी, बाजा, तबला आदि भी अच्छे से बजा सकते हैं। इस उम्र के बच्चों में नयी चीजें सीखने का चाव बहुत ज्यादा होता है इसलिए अगर मन से सिखाया जाए तो ये बच्चे अपना पूरा ज़ोर लगाकर बढ़िया पेशकारी कर जाते हैं और कोई कमी नहीं छोड़ते।

ज्यादा खीखने और ज्यादा कर सकने की सामर्थ्य के कारण ही इस उम्र के बच्चे स्कूल में काफी सारे विषय एक ही समय में पढ़कर याद भी कर लेते हैं तथा पिछला याद किया एक बार दोहराने पर ही झट से याद कर लेते हैं व उसे याद भी देर तक रखते हैं। इस उम्र में दिमाग के सेलों के जोड़ भी ताज़ा बने होते हैं और बढ़ भी रहे होते हैं, इसलिए इस उम्र की यादें इतनी गहरी होती हैं कि ज़िंदगी के अंतिम पड़ाव तक भूलती नहीं, जैसे गिनती, पहाड़े,

वर्णमाला आदि।

इसके अलावा इस उम्र में सुनाई गयी साखियां या बहादुरी के किस्से भी भविष्य में बच्चे की शख़्सियत पर गहन प्रभाव डालते हैं, झूठमूठ की बात को भी इस उम्र के बच्चे समझने के योग्य हो जाते हैं कि वास्तव में क्या होने वाला है और क्या झूठ ही कहा जा रहा है।

दस से ग्यारह वर्ष के बच्चे हिसाब एवं विज्ञान भी बहुत अच्छे तरीके से समझने के योग्य हो जाते हैं और कठिन हल भी निकाल लेते हैं, इसके साथ-साथ बच्चे को औरत व पुरुष के मध्य अंतर भी पूरी तरह से समझ में आ जाता है तथा किसी औरत के मुंह पर नकली दाड़ी-मूंछ लगाकर या पुरुष को स्त्री लिबास पहनायें तो बच्चे झट से उसको पहचान लेते हैं।

इसी तरह सात वर्ष के बच्चे को नाप-तोल की समझ भी आने लग जाती है तथा भारी या हल्की चीज़ की समझ भी आ जाती है।

जैसे-जैसे इस उम्र के बच्चे की लालसाएं तथा जरूरतें बढ़ती जाती हैं उसी तरह बढ़ते शरीर के अंदर जोश तथा ताकत भी बढ़ने लग जाती है। ये बदलाव एक रात में नहीं आते बल्कि सहज-सहज जवानी तक बढ़ते ही रहते हैं।

घर का माहौल एवं इर्द-गिर्द का माहौल इस उम्र में काफी ज्यादा प्रभाव डालता है, क्योंकि बच्चा स्कूल या साथियों में विचरता है तथा घर में बड़ों से या माता-पिता के साथ भी जुड़कर बैठता है। इन सबका निष्कर्ष है कि बच्चा अपने व्यवहार एवं विचार में परिवर्तन लाता है।

अगर शारीरिक विकास की बात करें तो इस उम्र के बच्चे छोटी उम्र के बच्चों से धीमी गति से बढ़ते हैं किंतु लड़कों का बारह वर्ष पर जाकर झट से कद बढ़ने लगता है और लड़कियां दस वर्ष की आयु में ही बढ़ने लगती हैं। अगर माता-पिता की लंबाई कम हो, खुराक कम रही हो, बच्चा बार-बार बीमार हो रहा हो तो कई बार अपने बराबर के लड़कों से बौना लगने लगता है।

सात से दस वर्ष की उम्र के बच्चे दो या तीन इंच हर वर्ष बढ़ जाते हैं तथा लगभग तीन किलो हर वर्ष भार भी बढ़ जाता है। इस उम्र में दूध के दांत भी टूटने शुरू हो जाते हैं तथा नये दांत आने से दांतों की बीड़ भी चौड़ी होने लगती है।

सेहत के पक्ष से भी इस उम्र तक पहुंचते बच्चे कुछ ठीक हो जाते हैं, क्योंकि छोटी उम्र में बार-बार लगती खांसी, जुकाम, पेट दर्द, उलटियां, टट्टियां आदि काफी कम हो जाती हैं। एक तरफ बच्चा थोड़ा-बहुत दर्द बर्दाश्त करने लग जाता है दूसरी तरफ खाने-पीने और रहन-सहन में परहेज़ आदि का मतलब समझने योग्य हो जाता है। इसके अलावा चोटें वगैरह भी बच्चे इस उम्र में ज्यादा खाते रहते हैं तथा कई बार एक्सीडेंट का भी शिकार हो जाते हैं।

इतना सब कुछ जान लेने के बाद उन फूलों जैसे साहिबज़ादों के नाम तक लिखते हुए भी मेरी कलम धीमी हो जाती है कि इस कलम की नोक तले साहिबज़ादों का नाम आते समय कहीं यह नोक भी उनको दर्द न पहुंचाये।

कैसी सोच एवं कितना पावन माहौल उन अलौकिक बालों को मिला कि अपनी सभी इच्छाएं दफन करके उन्होंने मात्र कौम की भलाई के लिए ही मन में जगह रखी!

जो भी ठंडे बुर्ज में दिसंबर की रात्रि को दो घंटे खड़ा होगा उसको समझ आ सकती है कि छोटे साहिबज़ादों का वहां पूरी रात बिताना कोई कहने मात्र ही नहीं था। उनके अंदर ठूंस-ठूंसकर भरा हुआ हौसला ही उनको गर्माहट देता रहा तथा उसी का सदका ही मृत्यु का भय

भी उनके पास न फटका। प्रभु की बाणी का सिमरन उनके चेहरों पर आए नूर का कारण था, इसीलिए उनका तेज देखा नहीं जाता था।

ऐसी लासानी शख़्सियतों की कुर्बानियां ऐसे ही व्यर्थ नहीं जाया करती, बल्कि उनके गर्व से उठे सिरों ने, जिन्होंने झुकना सीखा ही नहीं था, हमारे आज को रौशना दिया है। हम सबके सिर भी फख्र से अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सदका ही ऊंचे उठे हुए हैं। अगर कहीं वे छोटे बालक डगमगा जाते तो आज इतिहास कुछ और ही होता तथा हमारे सिरों पर सिक्खी वाला ताज न रहता :

बुलबुल के पिंजरे में कभी बाज़ नहीं रहते,
बुजदिलों के पास कभी राज़ नहीं रहते।
झुकाकर सिर जिस कौम को चलने की आदत हो,
उस कौम के सिर पर कभी ताज नहीं रहते।

आज के समय में जो कोई इंसान अपने नाम के आगे (आध्यात्मिक) 'गुरु' लगाता है तो उसको समझ लेना चाहिए कि 'गुरु' बनने के लिए सरवंश वारना पड़ता है और उसके बच्चों तक को भी कुर्बानी की एक मिसाल बनना पड़ता है।

जब कभी फ़तेहगढ़ साहिब जाना हो तो हम सब यह कोशिश करें कि इस गौरवमयी विरासत के बारे में अपने बच्चों को बताकर उनको सच तथा हक पर पहरा देने के काबिल बनाएं।

खाने-पिलाने में रखें बच्चों का ख़्याल : हर इंसान की यह कमज़ोरी होती है कि उसकी ओर कोई ध्यान दे और उसकी पूछताछ हो, तो फिर ऐसे में छोटे अनजान बच्चे ऐसा क्यों न चाहें? उनके लिए सबसे आसान समय होता है खाना खाने का, जब माता-पिता अपनी व्यस्तता में से समय निकालकर साथ बैठे होते हैं। अगर माता-पिता अपनी बातें कम करके बच्चे की तरफ ध्यान दें तो फिर बच्चे को ऐसा करने की जरूरत नहीं पड़ती, अगर माता-पिता अपनी बातों में बच्चे को भूल जायें तो बच्चे के पास आखिरी हथियार यही होता है कि वह खाना खाये बिना ही उठ जाये।

बच्चे में खाना न खाने के इसके अलावा और भी कई कारण होते हैं। बच्चों में दिमागी बीमारी, पट्ठों की बीमारी, तनाव, खाने की पाईप में रोक, बच्चे को किसी खाने की सुगंध न भाना, लंबी बीमारी के कारण भूख खत्म हो जाना, किसी मृत्यु या भयानक दुर्घटना से हुई घबराहट, किसी खाने के बाद आई उलटी, वायरल बुखार आदि बच्चों में खाने के प्रति नफ़रत या घबराहट पैदा कर सकते हैं, जिसके कारण बच्चों की भूख मर जाती है। इस तरह बच्चा खाना खाने से भागने लगता है। परिणामतः बच्चे का वज़न घटना शुरू हो जाता है।

लगभग छः से पच्चीस प्रतिशत बच्चे खाने-पीने में नखरा करते देखे जा सकते हैं। अमेरिका में पच्चीस प्रतिशत से कुछ ज्यादा बच्चे खाना खाने के समय आनाकानी करते हैं परंतु जो मानसिक रूप से सामान्य न हों उनमें से अस्सी प्रतिशत बच्चे खाना खाते समय शोर मचाते हैं। जो बच्चे ज्यादा नख़रेबाज हों, वे आम तौर पर एक वर्ष की आयु में ऐसा करना शुरू कर देते हैं। दो से तीन वर्ष की उम्र तक पहुंचते हुए इनकी गिनती दोगुनी हो जाती है। खाना खाने के समय ज्यादा नख़रा लड़कियां ही करती हैं। जो परिवार ज्यादा अमीर हों अक्सर उनके बच्चे ही ज्यादा नख़रे दिखाते हैं क्योंकि गरीबों को तो रोटी ही मुश्किल से नसीब होती है, खाने में उनके बच्चे क्या नख़रे दिखायेंगे?

खान-पान में नख़रा आम तौर पर ख़ानदानी भी होता है, क्योंकि ज्यादातर के माता-पिता भी अपने बचपन में ऐसा करते देखे गए हैं।

आम तौर पर खान-पान का यह नख़रा साल-डेढ़ साल की उम्र से शुरू होता है तथा लगभग तीन साल तक चलता रहता है। यदि इसका समय पर इलाज न किया जाये तो यह बड़ी उम्र तक चलता रह सकता है।

यह नख़रा दरअसल बच्चे के मानसिक विकास के लिए पनपना ज़रूरी होता है, क्योंकि इस उम्र में बच्चे को यह एहसास होना शुरू होता है कि वह अपनी ईन मनवा सकता है और किसी (माता-पिता) से टक्कर लेने से ज्यादा अच्छा और कोई तरीका नहीं होता।

प्राकृतिक तौर से भी बच्चे की भूख दो से तीन वर्ष की उम्र में बहुत कम हो जाती है, क्योंकि इस उम्र में बच्चे का वज़न नाममात्र ही बढ़ता है। दरअसल जन्म से डेढ वर्ष की उम्र तक बच्चे का वज़न बहुत तेजी से बढ़ता है तथा फिर एक वर्ष के आराम के बाद शरीर फिर बढ़ना शुरू हो जाता है।

प्राकृतिक रूप से कम हुई भूख बच्चों के लिए बढ़िया ढाल साबित हो जाती है तथा रोटी खाने का समय युद्ध का मैदान बन जाता है। अगर माता-पिता दोनों ही कामकाज वाले हों तथा बच्चे को एक वर्ष पूरा होने से पूर्व समय पर ऊपरी खुराक देनी न शुरू की जाये और न ही अलग-अलग प्रकार की खुराक दी जाये या फिर बच्चे को छोटी उम्र में ही स्कूल में धकेल दिया जाये तो बच्चे का रोटी के प्रति नख़रा मानसिक बीमारी बन सकता है।

खाने में से एक चीज़ के प्रति या तीन चार चीज़ों के प्रति नफ़रत पैदा हो जाना इसी उम्र में शुरू होता है। अगर समय पर बच्चे को खाने के अलग-अलग स्वाद न दिये जायें तो कई बार बड़ा होने तक भी बच्चा कुछ किस्म के खाने नहीं खाता।

दरअसल टी. वी. के द्वारा बच्चों के मनों में भिन्न-भिन्न मसालेदार पकवानों का प्रभाव पड़ जाता है और वे घर के खाने की ओर मुंह नहीं करते। ऐसे बच्चे घर से बाहर पार्टी आदि में हर किस्म के खाने तो खा लेते हैं परंतु घर आकर फिर उसी तरह का नख़रा कायम कर लेते हैं। वैसे भी अगर बच्चे को उसका मनपसंद खाना प्रतिदिन दिया जाये तो उससे भी उसका बन उचाट हो जाता है।

बाहरी खाने को पसंद करने वाले बच्चे आम तौर पर घर के खाने के प्रति चाहे आनाकानी करते रहें परंतु अपना पेट किसी न किसी चीज़ से भरे रखते हैं, ज्यादातर मोटापे की ओर चल देते हैं।

कुछ बच्चे माता-पिता की झिड़कियों से डरते मुंह में निवाला तो डाल लेते हैं किंतु एक ही निवाला मुंह में इधर-उधर घुमाते रहते हैं और आखिर थूक देते हैं या और चीज़ों में भी नख़रा दिखाना शुरू कर देते हैं, जैसे मोजे न पहनना या उलटे-सीधे कपड़े पहनना, ज़मीन पर नंगे पांव न चलना या नयी बनी चीज़ की खुशबू लेते वक्त ही उल्टी कर देना।

जिन बच्चों की यह आदत न छूटे, उनमें आम तौर पर आवश्यक तत्त्वों की कमी होने के कारण वे बार-बार बीमार हो सकते हैं या उनकी लंबाई कम रह सकती है तथा कई बार वे पढ़ाई में भी पीछे रह जाते हैं।

कई बच्चे छः माह की उम्र में ही, जब नयी चीज़ खाने के लिए शुरू की जाती है, मां के दूध को बेहतर समझते हुए नयी चीज़ को चखने से ही इंकार कर देते हैं। अगर मां हर रोज़ नयी चीज़ बदल-बदलकर देना जारी रखे तो धीरे-धीरे यह आदत ठीक हो जाती है।

यदि बच्चे को किसी किस्म की बीमारी न हो तो बच्चे को खुराक देते समय निम्नांकित

चीज़ों का ख़्याल रखना चाहिए :
१. खुराक में बहुत तेज़ खुशबू नहीं होनी चाहिए।
२. तेज मिर्च-मसाले नहीं होने चाहिए।
३. खाने वाले फल रेशे वाले या ज्यादा पक्के और रसदार होने चाहिए।
४. खाना ज्यादा तरल या बिलकुल सूखा नहीं होना चाहिए। घी की मात्रा ज्यादा नहीं होनी चाहिए।
५. बच्चों को खाना सबके साथ बैठकर खाना चाहिए तथा रोटी शुरू करने से पूर्व उन्हें ईश्वर का शुक्राना करना सिखाना चाहिए, ताकि वे रोटी की अहमियत समझ सकें।
६. टी. वी. या कहानी की किताब पढ़ते हुए रोटी नहीं खानी चाहिए।
७. थोड़े बड़े बच्चों के लिए दूसरों से अलग खाना नहीं होना चाहिए।
८. खाना बनाते समय और मेज़ पर लगाते समय बच्चों को काम में लगा लेना चाहिए।
९. बच्चों की सब्जियों तथा दालों से वाकफियत करवाते रहना चाहिए और हर एक की अलग पौष्टिकता के बारे में बताते रहना चाहिए।
१०. अगर बच्चा खाने-पीने के समय आनाकानी करे तो उसे मार-पीटकर बिठाने की बजाय यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उसको अगले खाने से पहले कुछ भी खाने को नहीं मिलेगा, जैसे कि बिस्कुट, टॉफियां, चॉकलेट आदि।
११. बच्चे को खाना खाते समय भागने-दौड़ने नहीं देना चाहिए, बल्कि बैठकर खाना खाने को प्रेरित करना चाहिए। पूरी प्लेट खत्म करने के लिए दबाव नहीं डालना चाहिए।
१२. खाते समय मात्र पानी के साथ पेट नहीं भरने देना चाहिए।
१३. रोटी को खत्म करने के लिए किसी किस्म का लालच नहीं देना चाहिए।
१४. जो खाना बच्चे को पसंद न हो, उसको जबरदस्ती या हर दूसरे दिन नहीं देना चाहिए, बल्कि सप्ताह के बाद किसी नये तरीके से बनाकर देना चाहिए। अगर बच्चा फिर भी पसंद न करे तो किसी अन्य खाने में मिलाकर दिया जा सकता है। मान लो कि बच्चा दूध पीना पसंद नहीं करता तो बच्चे के लिए रोटी बनाते समय आटे में गूंथकर दिया जा सकता है या खीर, सेवियां आदि के रूप में भी। इसी तरह नापसंद सब्ज़ी कभी भूनकर, कभी तलकर और कभी रोटी में भरकर दी जा सकती है।

यदि रोटी में किए नख़रे के कारण बच्चे के भार तथा लंबाई में बढ़ोतरी न हो रही हो या भार घटने लग जाये, आंखों तले काले घेरे हो जायें, नेत्रदृष्टि कम होनी शुरू हो जाये, टांगें टेड़ी हो जायें, बाल झड़ रहे हों, पेट बाहर निकलता नज़र आए तो डॉक्टरी सलाह द्वारा खुराक सही देने के साथ-साथ आवश्यक विटामिन, केलशियम भी शुरू कर देने चाहिए।

अगर माता-पिता समय पर बच्चे का ख़्याल रख लें (जो जरूरत से ज्यादा नहीं होना चाहिए) तो आम तौर पर पांच वर्ष की उम्र में बच्चे का खाने के प्रति नख़रा लगभग समाप्त हो जाता है। अगर यह नौ वर्ष की उम्र तक चलता रहे तो ज्यादातर लोगों की ज़िंदगी भर यह आदत छूटती नहीं।

यह लिखने का लक्ष्य यही था कि माता-पिता को मालूम हो कि बच्चों का खाना खाने में नख़रा करना या किसी किस्स के खाने के लिए आनाकानी करना कोई बीमारी नहीं होती, परंतु माता-पिता द्वारा जरूरत से ज्यादा ध्यान और धक्केशाही करने से यह मानसिक बीमारी में परिवर्तित अवश्य हो सकती है तथा बच्चे के शरीर का नाश भी कर सकती है।



बच्चों और दादा-दादी में न कम हो घनिष्ठता

*-डॉ. नवरत्न कपूर**

समाज में रहते हुए प्रत्येक स्त्री और पुरुष चाहता है कि उनका विवाह हो जाए तथा वे शीघ्र संतानवान हो जाएं। अधिकांश लोगों की मनोकामना होती है कि उनके घर पुत्र हो तथा एतदर्थ पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अपने आराध्यदेव अथवा गुरुदेव का स्मरण करके यही प्रार्थना करती हैं। कुछ पुरानपंथी बेटी को एक बोझ समझते हैं और दामाद के कारण अपनी मूंछ नीची होने जैसी मूर्खतापूर्ण मनोविज्ञान पालते हुए माता की कोख में ही उसका हनन करने को तैयार हो जाते हैं। इसे आधुनिक चिकित्सीय वैज्ञानिक भाषा में 'कन्या भ्रूण हत्या' **(foeticide)** कहा जाता है। ऐसी घृणित भावना के प्रति भी विरोधी स्वर उठने लगा है और भारत सरकार की ओर से पुत्री के जन्म पर लोगों को कुछ धन-राशि भेंट की जाने लगी है ताकि इस क्रूर प्रवृत्ति पर अंकुश लग सके। पंजाब में १३ जनवरी अर्थात् पौष मास की अंतिम तिथि को परंपरागत 'लोहड़ी' का पर्व सामूहिक रूप में मनाया जाता है। लगभग दो दशक पूर्व 'लोहड़ी' जलाने के लिए गांवों और शहरों की गलियों के लड़के तथा लड़कियां अपनी-अपनी टोली बनाकर, हर घर के सामने जाकर प्रशंसागान करके लकड़ी और उपले इकट्ठे किया करते थे। फिर भी 'लोहड़ी' के दिन केवल बेटे के जन्म पर ही लोग आस-पास में रेवड़ियां, गज़क और मूंगफली का उपहार बांटते थे, किंतु अब बेटी की 'लोहड़ी' भी मनाई जाने लगी है और समझदार माता-पिता ये वस्तुएं उसी तरह वितरित करते हैं जैसे बेटे के जन्म पर। इस प्रकार अब धीरे-धीरे लोगों की समझ बदलने लगी है और पढ़ाई में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की ऊंची प्राप्तियों के कारण मां-बाप अब बेटे तथा बेटी में कोई अंतर नहीं मानते।

उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कियां अब प्रतियोगी परीक्षाओं में लड़कों को भी मात देने लगी हैं। वे अपनी जाति अथवा प्रांत का वर ढूंढने में असमर्थ माता-पिता के विरोध के बावजूद अंतर्जातीय विवाह भी करने लगी हैं। इसके कारण कई बार पति के परिवार वालों में भी सिर फुटौवल शुरू हो जाती है। गृहणी की पारंपरिक भूमिका निभाने वाली नौकरी-पेशा महिलाएं ऐसी स्थिति में सास-ससुर को भी अपने से दूर रखना चाहती हैं और घर का कामकाज सर्वकालीन नौकर अथवा नौकरानी के भरोसे छोड़ना अपनी शान समझती हैं। परिवार में सुख-शांति बनी रहे और बच्चों तक माता-पिता के क्लेश की आहट न पहुंचे, इसके लिए पति-पत्नी अपने-अपने ढंग से सामंजस्य-भाव का सहारा ले लेते हैं।

नौकरी-पेशा समझदार पुत्र तथा पुत्रवधू उच्च पदों पर आसीन होने के बावजूद वयोवृद्धों को भरपूर सम्मान देते हुए अपने साथ रखने में संकोच नहीं करते। वे अपने बेटे या बेटी को अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में दाख़िल करवाते हैं। यही नहीं, वे अपने शिशु को सर्वज्ञ

**Flat No. B-1801, Plot No. 106, Tulsi Sagar Housing Society, Sector-28, Nerul (Navi Mumbai)-400706*

बनाने के लिए संगीत एवं चित्रकारी की शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त खेल-कूद में सिद्धहस्त बनाने के लिए किसी 'खेल अकादमी' में भी प्रविष्ट करवा देते हैं। बच्चे को नए से नए स्वादिष्ट पदार्थ खिलाने के लिए घर की बजाय छुट्टी वाले दिन किसी होटल में ले जाते हैं। वहां पर पीज़्ज़ा, पासता, बर्गर आदि खिलाने के लिए ले जाने के समय दादा-दादी को भी अपने साथ चलने के लिए अनुरोध करते हैं। बच्चे का जन्म-दिन भी इसी प्रकार होटल में मनाते हैं। बच्चों के मनपसंद के आमिष पदार्थ होटल के कर्मचारियों द्वारा परोसे जाने तथा आमंत्रित लोगों के द्वारा सेवन करने के पश्चात विदा होते समय उनके लाए हुए उपहारों के बदले में कोई उपहार भेंट करते हैं। पुराने विचारों के दादा-दादी यदि इनमें से किसी बात पर भौंए सिकोड़ते हैं अथवा कोई कटु टिप्पणी करते हैं तो बच्चे तथा मां-बाप के दिल को चोट पहुंचती है। कई पुत्र तथा पुत्रवधुएं और पोते-पोतियां तो उनके इस व्यवहार पर रोष भी प्रकट करते हैं। यही छोटी-छोटी बातें बच्चों के मन में घर कर जाती हैं और वे दादा-दादी से जी चुराने लगते हैं।

बहुत-से वयोवृद्ध दादा अपने व्यवसाय तथा नौकरी आदि से सेवा-मुक्त हो जाने के बाद यौवन-काल में अपनाई गई शराब और धूम्रपान की आदतों को सहेजे रहते हैं। ऐसे में उनके बच्चे पोते-पोतियां यदि उनके इन कुव्यसनों पर कोई टिप्पणी करते हैं तो वयोवृद्ध जल-भुन जाते हैं। ये बातें भी दादा-दादी के कई बार दूर जाने का कारण बन जाती हैं।

हिंदी की एक कहावत है कि "ताली दोनों हाथ से बजती है।" इसका अर्थ यही है कि यदि बड़ी उम्र के लोग अपने से छोटों की भावनाओं का आदर करेंगे तो स्वाभाविक तौर पर वे सम्मान के पात्र बनेंगे। सभी दादा-दादी अपने पोते-पोतियों की उच्च शिक्षा और सम्मान-प्राप्ति को आतुर रहते हैं। समय के अनुसार उन्हें अपना स्वभाव भी बदलना चाहिए। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो तर्क से समझाई जा सकती हैं।

आज भी कई घरों में पढ़े-लिखे दादा-दादी में विशेषत: दादी बड़ी समझदार होती है। वह जानती है कि उसका बेटा और पुत्र-वधू कामकाजी हैं और उन्हें समय पर अपने कार्यालय अथवा शिक्षा-स्थल पर पहुंचना होता है, अत: वो पौ फूटने पर बच्चों को जगाती है। बच्चे उठते ही दादा और दादी के चरण स्पर्श करने के पश्चात् नहा-धोकर तैयार हो जाते हैं। उनके नाशता करने के पश्चात् दादा अथवा दादी उनकी किताबों का भारी झोला उठाकर उन्हें स्कूल की बस में चढ़ा आते हैं। फिर पोता-पोती के घर लौटने पर साथ-साथ भोजन करते हैं और उनकी पढ़ाई तथा मित्रों के व्यवहार की बातें करते हैं। सुशिक्षित दादा-दादी उनकी समझ में न आने वाली पढ़ाई की बातों का समाधान ढूंढते हैं। छुट्टी वाले दिन यदि माता-पिता व्यस्त हों तो बच्चे दादा-दादी के साथ गिट्टियों वाली खेल या अन्य खेल खेलना पसंद करते हैं। इस प्रकार पोता-पोती की भावनाओं को भली प्रकार समझने वाले दादा-दादी यदि जलवायु-परिवर्तन के लिए किसी अन्य संबंधी के घर दूसरे नगर में चले जाते हैं तो वे टेलीफोन अथवा मोबाइल से दादा-दादी का कुशलक्षेम ही नहीं पूछते बल्कि यही अनुरोध करते हैं कि वे शीघ्रातिशीघ्र उनके पास लौट आएं। इससे "एक अकेला, दो ग्यारह" की उक्ति सिरे चढ़ाने में दादा-दादी सर्वाधिक भूमिका निभाते हैं।



बच्चों के माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

-स. बिक्रमजीत सिंघ*

कहते हैं कि माता-पिता के कर्त्तव्यों का कर्ज़ बच्चा सारी उम्र नहीं उतार सकता, क्योंकि माता-पिता ही बच्चे के प्रति ऐसी जिम्मेदारियां निभाते हैं, जो किसी और के हिस्से नहीं आती। बच्चे के जन्म से लेकर उसे प्रौढ़ बनाने तक माता-पिता द्वारा निभाया हरेक कर्त्तव्य बच्चे की शख़्सियत को निखारने में अति महत्त्वपूर्ण होता है। माता-पिता बच्चे के प्रति जो चिंता-फ़िक्र उसकी भलाई के लिए करते हैं, वह कोई और नहीं कर सकता।

बच्चे का पालन-पोषण, उसकी देख-रेख, बच्चे की तोतली जुबान का समझना, उसकी तमाम जरूरतों को पूरा करना, उसकी शिक्षा का प्रबंध करना के अलावा वो सब बातें जो बच्चे को खुशी प्रदान करती हैं, सब पूरी करना माता-पिता के ही हिस्से आती हैं। इतना ही नहीं, पढ़ाई-लिखाई के अलावा बच्चे के भविष्य सम्बंधी, उसके कैरियर सम्बंधी विचार कर उन्हें ऊंची पदवी तक पहुंचाना, उन्हें किसी अच्छे रोज़गार में डालना इत्यादि सब कुछ की जिम्मेदारी माता-पिता की ही बनती है।

ऐसा करते हुए माता-पिता अपने मन में कई आकांक्षाएं भी पैदा करते हैं। वे यह भी सोचते हैं कि बुढ़ापे में जब उन्हें सहारे की जरूरत पड़ेगी तो उनका बच्चा हर जगह उनका सहारा बनकर उनका साथ देगा, जिससे उनका बुढ़ापा आसानी से गुज़र जाए।

जब युवावस्था तक पहुंचकर माता-पिता अपने बच्चे की संपूर्ण शख़्सियत का निर्माण कर लेते हैं, उसे इतना काबिल बना लेते हैं कि वह अपनी रोज़ी-रोटी कमा सके, तो इसके उपरांत उनका अगला लक्ष्य अपने बच्चे की शादी करने का होता है अर्थात् उसे गृहस्थी बनाने का। यहां पर माता-पिता की लड़के के प्रति यह सोच होती है कि शादी के बाद उनका लड़का घर की जिम्मेदारियां उठा लेगा और उनको अपनी कई ड्यूटियों से कुछ राहत मिलेगी।

अपने माता-पिता के प्रति फर्ज़ निभाने की लत यदि बच्चों में बचपन से पनप जाए तो श्रेयस्कर होता है। सबसे प्रमुख और सर्वोपरि फ़र्ज बच्चों का अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना होता है, उनके कहे मुताबिक चलना होता है। कुछ हालात में बच्चा जब अपने इस फर्ज़ की तरफ ध्यान नहीं देता तो अक्सर माता-पिता यह कहकर सब्र कर लेते हैं कि "बच्चा है समझ जाएगा।"

कई घरों में जब बच्चे की शादी हो जाती है तो उसे माता-पिता के प्रति फर्ज़ निभाने में बड़े धैर्य व संतुलन से काम लेना पड़ता है। बच्चा शादीशुदा है, पत्नी वाला है, उसे पत्नी को भी खुश रखना है और माता-पिता को भी। यहां पर माता-पिता को अपने में यह परिवर्तन लाना चाहिए कि जो समय उनका बच्चा पहले उनको देता था, उसी समय का कुछ भाग या

***S/o S. Ranjeet Singh, 2946/7, Bazar Loharan, Chowk Lashmansar, Sri Amritsar. M : 87278-00372**

आधा समय वो अपने जीवन-साथी को भी दे ताकि पारिवारिक माहौल सौहार्दपूर्ण बना रहे। बहू अगर समझदार होगी और वो अपने पति का माता-पिता (सास-ससुर) की सेवा में हाथ बटाएगी तो परिवार में मनमुटाव वाली स्थिति कमोबेश कम होगी। वास्तव में देखा जाए तो शादी के बाद लड़के के लिए कई बार स्थिति परीक्षा से गुज़रने की बन जाती है। यह स्थिति तभी बनती है जब बुजुर्गों में परिवर्तन न आए तथा बहू पति पर सम्पूर्ण अधिकार दर्शाने लगे।

बच्चों के विशेषत: लड़कों के माता-पिता के प्रति फर्ज़ों की बात की जाए तो स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जैसी ड्यूटी माता-पिता की बच्चों को बड़ा करने की थी, उसे जमाने की ठोकरों से बचाने की थी, लगभग वैसी ही ड्यूटी माता-पिता के बुजुर्ग हो जाने पर बच्चों को निभानी पड़ती है। जैसे बचपन में बच्चों को पग-पग पर सहारे की जरूरत पड़ती है कुछ ऐसी ही स्थिति बुढ़ापे में माता-पिता के जीवन में भी देखने को मिलती हैं।

माता-पिता के बुजुर्ग हो जाने पर कई बार ऐसे हालात पैदा होते हैं जहां उन्हें अपनी औलाद के भरपूर सहारे की जरूरत होती है, परंतु उस समय उनकी औलाद की परिस्थिति और की और हो चुकी होती है। बच्चे अपने माता-पिता के प्रति बनती सभी जिम्मेदारियों को निभाने से किनारा करने लगते हैं।

जब माता-पिता बुजुर्ग हो जाने के कारण प्राकृतिक, मानसिक तथा शारीरिक तौर पर ऐसे विशेष स्वभाव के बन जाते हैं उस समय में उनकी मानसिकता को समझना बच्चों के लिए अति आवश्यक होता है। किसी बात को बार-बार दोहराना, बात-बात पर बच्चों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करनी इत्यादि माता-पिता की ये बातें बच्चों को फालतू-सी लगने लगती हैं। इस दशा में माता-पिता तथा उनके बुढ़ापे को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। जब माता-पिता बुजुर्ग हो जाते हैं तो कमज़ोर शरीर के साथ उनकी याददाश्त और नज़र भी कमज़ोर होने लगती है जिस वजह से उन्हें कई तकलीफों का सामना करना पड़ता है। इन शारीरिक समस्याओं के समाधान के लिए उन्हें डॉक्टरी सुविधायों की जरूरत होती है, चाहे इस अवस्था में माता-पिता दवाई लेने, चेकअप करवाने से आनाकानी करने लगते हैं। ऐसे में उनको समझाना चाहिए कि जरूरत के मुताबिक डॉक्टर की सलाह, चेकअप, दवाई जरूरी होती है।

बुढ़ापे में व्यक्ति को खाने-पीने की तरफ ज्यादा ध्यान देने की जरूरत होती है। शारीरिक दशा के मुताबिक क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, इन सबका ध्यान बच्चों के साथ-साथ माता-पिता को भी रखना चाहिए। अगर बुजुर्ग का मन कुछ खास खाने को करे तो बच्चों को चाहिए कि आवश्यकतानुसार तथा संतुलित मात्रा में वो चीज़ उन्हें मुहैया करवाई जाए।

माता-पिता को घर में अच्छा माहौल देना, उनकी साफ-सफाई का ध्यान रखना, मौसम अनुसार उनके कपड़ों का प्रबंध करना आदि भले छोटी-छोटी बातें हैं मगर हैं सब बुजुर्गों की देखभाल से जुड़ी हुई।

उपरोक्त इन बातों के साथ एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि बच्चों को अपने माता-पिता की बातें सुनने के लिए कुछ समय जरूर देना चाहिए। ज्यादातर माता-पिता की यही शिकायत होती है कि उनके बच्चे उनके

पास नहीं बैठते, उनकी बात नहीं सुनते, उन्हें समय नहीं देते। चाहे यह बात भी मानने योग्य है कि आजकल समय की कमी हरेक इंसान को है, किंतु इतनी भी नहीं कि वह अपने माता-पिता की बात सुनने, उनके पास कुछ समय बैठने का समय न निकाल सके। यदि माता-पिता के लिए समय न निकाला जाए तो माता-पिता अकेलेपन का शिकार होकर और कई मानसिक परेशानियों से पीड़ित हो जाते हैं।

माता-पिता किसी धार्मिक स्थल के दर्शन करना चाहते हैं तो उन्हें उस धार्मिक स्थल पर ऋतु व मौसम का हिसाब लगाकर ले जाना चाहिए।

आधुनिक युग में जहां पीढ़ियों में अंतर की बात की जा रही है वहीं बच्चों का फर्ज़ बनता है कि वे पीढ़ियों में अंतर के कारणों की निशानदेही करें और यह देखें कि इस अंतर को कैसे खत्म किया जाए अथवा कम किया जाए।

टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आज के बच्चे काफी आगे निकलकर **Advanced electronics devices and gazzets** को अपना रहे हैं, उनकी सुविधायों से लाभ ले रहे हैं। बच्चों का अब यह भी फर्ज़ बनता है कि इस नए दौर की समूची नई तकनीकें, उनके भाग, विशेषताएं, जहां तक संभव हो सके, माता-पिता को उनके बारे में अवश्य बताएं। कई हालात में यह भी देखने को आया है कि बच्चों द्वारा चलाए जाने वाले ये उपकरण **Laptop, Internet Devices, Mobile Phone** इत्यादि चीज़ों से माता-पिता परेशान होते हैं, उनसे चिड़ते हैं। वास्तव में ये आधुनिक चीज़ें उनके मानसिक वातावरण से मेल नहीं खाती, जिस कारण उनका इन चीज़ों के प्रति विरोध करना स्वाभाविक ही बन जाता है। इन **Electronics devices and gazzets** उपकरणों का इस्तेमाल करने वाले बच्चों को चाहिए कि अनुकूल वातावरण बनाकर अपने माता-पिता को इनके बारे में अवश्य बताएं, ताकि उनका भी **Updated Technology** के बारे में ज्ञान बढ़ सके। इससे माता-पिता की इन चीज़ों से उदासीनता कम होगी और घर में माहौल अच्छा बनेगा।

इस सबके अलावा आज आर्थिक मज़बूरियों और उच्च शिक्षा-प्राप्ति के कारण कई हालात में बच्चे अपने माता-पिता से दूर रहने लग गए हैं। पढ़े-लिखे बच्चों को जब नौकरी/काम इत्यादि के मौके मिलते हैं तो उनको दूसरे (स्थानों) शहरों, यहां तक कि विदेश में भी जाना पड़ता है। जहां बच्चों का अकेले रहना उनका स्वाभाव बन जाता है वहीं उनके माता-पिता को भी पीछे अकेले रहना पड़ता है। ऐसे में बच्चों को अपने माता-पिता के साथ लगातार संपर्क में रहना चाहिए। अगर बच्चा देश में ही है तो उसे समय-समय पर अपने माता-पिता के पास घर आना जरूरी है और उसे अपनी अनुपस्थिति में माता-पिता के काम आने वाली सारी आवश्यक वस्तुओं आदि का प्रबंध करके देना चाहिए।

देखा जाता है कि आज के प्रतिस्पर्धा भरे माहौल में बच्चे प्राय: घर-परिवार की जगह पैसा कमाने को ही प्राथमिकता देने लगते हैं। यह सर्वदा अनुचित है। माता-पिता के लिए बच्चे ही असली धन-दौलत होते हैं तथा बच्चों को भी माता-पिता को बहुमूल्य विरासत के रूप में संभालकर रखना चाहिए।



बच्चों के स्वास्थ्य सम्बंधी ज़रूरी बातें

-स. गुरदीप सिंघ*

भोजन और स्वास्थ्य का गहरा सम्बंध है। भोजन शरीर की मानसिक तथा शारीरिक जरूरतों को पूरा करता है। बच्चों के शरीर को फलने-फूलने, बढ़ने, उनके खेलने, काम करने, बीमारियों से दूर रहने तथा उनकी मानसिक संतुष्टि के लिए उचित मात्रा में भोजन की जरूरत होती है।

पैसों से खान-पान की वस्तुएं तो खरीदी जा सकती हैं लेकिन स्वास्थ्य नहीं। अगर पैसों से स्वास्थ्य खरीदा जा सकता होता तो हर धनवान व्यक्ति स्वस्थ ही होता। पैसों से महंगे पदार्थ (बादाम, मुनक्का, अख़रोट, काजू, पिस्ता आदि) तो खरीदे जा सकते हैं, लेकिन आहार में केवल इन्हीं पोषक तत्वों को प्राथमिकता देकर कोई स्वस्थ नहीं बना रह सकता। इसी तरह घी, मक्खन, मलाई, रबड़ी को भी सम्पूर्ण पौष्टिक आहार में शामिल नहीं किया जा सकता। ऐसे अनेक फल और सब्जियां हैं जो इन सबके तुलनात्मक रूप में कहीं ज्यादा सस्ते हैं।

सही पोषण न मिलने के नुकसान : समुचित मात्रा में पोषण न मिलने से शरीर के सभी अंगों और उनकी कार्य-प्रणाली पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इस स्थिति में बच्चा कई रोगों से ग्रस्त हो सकता है :

- बच्चा आयरन की कमी के कारण रक्त की कमी (एनीमिया) का शिकार हो सकता है।
- विटामिन 'ए' की कमी से नेत्र और उनकी ज्योति क्षीण होने लगती है; रतौंधी (नाइट ब्लाइंडनैस) रोग भी हो सकता है।
- कैल्शियम के अभाव से हड्डियां और उनके जोड़ कमज़ोर होने लगते हैं।
- हृदय की सेहत के लिए पोटेशियम लाभप्रद है। इस तत्व के अभाव से हृदय की कार्य-प्रणाली सुचारू रूप से कार्य नहीं करती।
- सही पोषण के अभाव से शरीर का रोग-प्रतिरोधक तंत्र कमज़ोर हो जाता है। इससे बच्चा शीघ्र ही विभिन्न बीमारियों के संक्रमण का शिकार हो जाता है।
- संतुलित और पौष्टिक भोजन के अभाव में बच्चों की मानसिक क्षमता भी क्षीण होने लगती है।

पौष्टिक आहार : हैदराबाद स्थित 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन' के अनुसार, "जिस आहार में सभी पोषक तत्व, जैसे-- कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, मिनरल्स और फाइबर समुचित मात्रा में हों, उसे पौष्टिक आहार कहा जाता है।"

घर में बनाए गए साफ-सुथरे और संतुलित भोजन आधुनिक फास्ट फूड, जंक फूड से कहीं ज्यादा गुणकारी हैं। 'फास्ट फूड' वह पदार्थ है जिसको पकाने, परोसने और खाने में ज्यादा समय नहीं लगता। बाज़ार में कई तरह के फास्ट फूड-- समोसा, आलू की टिक्की, बर्गर, नूडल्स, पाव भाजी आदि मिलते हैं। इनके बारे में कई तरह के रंग-बिरंगे छपे हुए इश्तिहार

*३०२, किदवई नगर, लुधियाना-१४१००१, मो. ९८८८१-२६६९०

आदि देखकर बच्चों का फास्ट फूड खाने को मन ललचा जाता है। 'जंक फूड' यानि कि 'रद्दी भोजन।' इनको गहरे तेल में तला जाता है। तले जाने से इनमें चिकनाई की मात्रा ज्यादा हो जाती है। इससे मोटापा हो जाता है।

फास्ट फूड में पौष्टिकता न होने से बच्चों के पेट में दर्द, गैस पैदा हो जाती है, भूख कम हो जाती है। बाज़ार तथा स्कूल आदि में प्राय: रेहड़ी, फड़ी पर बिकने वाले पदार्थ अच्छी तरह ढककर नहीं रखे जाते। उन पर धूल-मिट्टी आदि पड़ जाती है, मक्खियां भिनभिनाती हैं। इनसे बचने के लिए बच्चों को घर पर ही टिक्की, समोसा, दही-भल्ले, चाट, चटनी आदि तैयार करके खिलाना चाहिए। भोजन करने से पहले कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, जैसे कि :

- भोजन करने से पहले हाथों को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए।
- भोजन प्रसन्नचित्त होकर करना चाहिए।
- भूख लगने पर ही आवश्यकतानुसार भोजन करना चाहिए।
- सुबह का नाश्ता अवश्य करना चाहिए।
- तली हुई तथा चटपटी मसालेदार खुराक जल्दी हज़म नहीं होती, अत: इनका प्रयोग कम मात्रा में करना चाहिए।
- मीठे पदार्थों का भी सेवन कम करना चाहिए।
- भोजन करते समय टी. वी. आदि नहीं देखना चाहिए।

मारधाड़ वाले फिल्मी दृश्य देखने से बच्चे उत्तेजित हो उठते हैं और गुस्सैल बन जाते हैं, जिसका सीधा असर उनकी पाचन-प्रणाली पर पड़ता है।

खाना खाने के बाद दातों को अवश्य साफ करना चाहिए अन्यथा इनमें सड़ांध पैदा हो जाती है।

स्कूली बच्चों के टिफ़िन में पौष्टिकता का अवश्य ख़्याल रखना चाहिए। ऐसे बहुत-से बच्चे हैं जिनको खाने में पिजा, बर्गर, जंक फूड, नूडल्स और सॉस खाना ही पसंद है। बच्चों की इस प्रवृत्ति को बदलने की जरूरत है। फास्ट फूड के स्थान पर टिफ़िन में ताजे फल मौसम के अनुसार अवश्य रखने चाहिए। सब्जी के साथ चपाती या परौंठा भी दिया जाना चाहिए।

छोटी उम्र के बच्चों का शारीरिक विकास तेजी से होता है, लंबाई आदि तेजी से बढ़ती है। शारीरिक विकास से सम्बंधित हारमोन्स (ग्रोथ हारमोन्स) को सक्रिय करने के लिए अंकुरित अनाज, जैसे मूंग और सोयाबीन खाने के लिए प्रेरित करें। इनमें मिनरल्स और विटामिन्स (खासकर विटामिन 'ई') पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

बच्चों के लिए दूध पीना जरूरी है। दूध में कैल्शियम की भरपूर मात्र होने से हड्डियों की मज़बूती बनी रहती है।

अभिभावकों को बच्चों के स्वाद को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। कोल्ड ड्रिंक के स्थान पर उन्हें लस्सी, शिकंजवी, शर्बत आदि पीने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इनमें पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं। पानी को उबालकर पीना चाहिए।

पेट के दांत नहीं होते। भोजन को अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिए, जिससे उनमें सभी प्रकार के एनज़ाईम ठीक प्रकार से मिल जाएं और पचने में आसानी हो। दांतों का काम आंतड़ियों से न लें।

जहां संतुलित तथा पौष्टिक खुराक स्वास्थ्य

(शेष पृष्ठ ८३ पर)

माता-पिता के साये से दूर संस्थाओं में बढ़-फूल रहा बचपन

*-स. सतनाम सिंघ कोमल**

बच्चे हमारे वारिस हैं, हमारा भविष्य हैं। जो हम आज इनको देंगे वो ही ये कल समाज को लौटाएंगे। हर मां-बाप अपनी हैसियत से बढ़कर बच्चों के लालन-पालन पर खर्च करता है, क्योंकि इन पर खर्च करके उन्हें खुशी मिलती है।

हर मां-बाप का सपना होता है कि उसका बेटा अच्छा पढ़ा-लिखा हो और वो ज़िंदगी में कामयाब हो। कुछ बदनसीब बच्चे ऐसे भी होते हैं जो मां-बाप के प्यार से वंचित हो जाते हैं। उन बेबस और मज़बूर मासूमों को समाजसेवी संस्थायें संभालती हैं। अपने बच्चों का लालन-पालन तो हर मनुष्य करता है, मगर ऐसे लोग भी दुनिया में आते हैं जो दूसरों के नन्हे-मुन्नों को अपने बच्चों जैसा ही प्यार देते हैं। उनका धर्म सेवा होता है; कर्म सेवा होता है। उनका सभी से सेवा का ही रिश्ता बन जाता है। मां की ममता, पिता का मोह, बहन-भाई का प्यार, बच्चों का स्नेह सब उनका इसी सेवा में समा जाता है। सेवा के रंग के आगे सभी रंग फीके हो जाते हैं। संस्था पिंगलवाड़ा, श्री अमृतसर इन्हीं रिश्तों की देन है। भगत पूरन सिंघ सेवा की मशाल कंधे पे रखकर संसार के लिए मिसाल बने। वे पिंगला (अपाहिज) प्यारा सिंघ को कंधे पे उठाए उसकी सेवा-संभाल करते रहे। आज सैकड़ों प्यारा सिंघ जैसे पिंगलवाड़े की धरोहर बने हुए हैं। कितने दशकों से मंद-बुद्धि बच्चे यहां पर रह रहे हैं। उनका रहन-सहन का ढंग बेहतर है। पिंगलवाड़ा इस प्रयास के लिए प्रशंसा का पात्र भी है। यह ऐसे ही बेबस और मज़बूर लोगों की देखभाल करता रहे यही हमारी दुआ है।

कुछ समय पहले मुझे पिंगलवाड़ा कैंपस में जाने का मौका मिला। मेरे साथ थे बच्चों के कलाकार स. कमलजीत सिंघ नीलों। हम डॉक्टर इंदरजीत कौर (अध्यक्षा, पिंगलवाड़ा सोसायटी) के घर पर पहुंचे तो उन्होंने कैंपस के सभी बच्चों को बुला लिया। स. कमलजीत सिंघ नीलों बच्चों के लिए लिखता है, गाता है और उनके लिए ही जीता है। जब बच्चों के लिए गाना शुरू किया तो बच्चे बहुत खुश हुए। उनकी खुशी देखने वाली थी। बच्चे अपनी प्यारी-प्यारी मुसकान लिये किलकारियां मार रहे थे, नीलों के साथ गा रहे थे। यह सिलसिला लगभग डेढ़ घंटे तक चलता रहा। बच्चे इसको बंद नहीं करने देते थे। मैं भी इनमें बैठा हुआ था। ये मासूम नहीं जानते थे कि इनके मां-बाप कहां हैं, कौन हैं? असली रिश्तों से दूर इनका रिश्ता तो डॉक्टर साहिबा से ही है। जब हम खाना खा रहे थे तो इन बच्चों के बारे में बातें कर रहे थे। डॉ. साहिबा ने कहा कि इन बच्चों के अंदर रिश्तों की भूख है। ये चाहते हैं कि जो हमें मिलने आते हैं वे हमारे कोई रिश्तेदार बनकर आयें। ऐसे में ये बहुत खुश होते हैं कि हमारा मामा, चाचा आया है। बच्चों की यह मानसिकता डॉक्टर साहिबा ने पढ़ी है। अब तो

**२४८, अर्बन अस्टेट-१, लुधियाना-१४१०१०, मो. ९८७२६-०९९२१*

इनकी रिश्तेदारी केवल डॉक्टर साहिबा से ही है। जब ये जवान होंगे तो शायद नये रिश्तों में बंधेंगे।

जो बच्चे मंद-बुद्धि हैं, उनको तो किसी रिश्ते की समझ ही नहीं है। ज़िंदगी क्या है, इसका उन्हें कुछ भी पता नहीं। इनकी जिस्मानी जरूरतें पूरी हों, इससे आगे इनके लिए कुछ भी नहीं। पिंगलवाड़ा ही इनकी दुनिया है। इनकी दुनिया बाकी दुनिया से बिलकुल अलग है। जो बच्चे मानसिक रूप से स्वस्थ हैं उन्हें भी मां-बाप जैसी सम्पदा की कमी खटकती है और वे अपनी इस कमी को डॉक्टर साहिबा का सम्पर्क पाकर पूरी करने का यत्न करते हैं।

भगत पूरन सिंघ का लगाया हुआ पिंगलवाड़ा संस्था का पेड़ बहुत बड़ा हो गया है। इसकी महक दुनिया भर में फैल गई है। दानी सज्जन इसकी मदद कर रहे हैं वरना इतनी बड़ी संस्था का खर्च चलाना बहुत मुश्किल है। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर भी इस संस्था की आर्थिक मदद करती है। इस संस्था का अपना फार्म भी है जिससे अनाज और दूध आ जाता है। ऐसी ही एक संस्था चीफ खालसा दीवान सोसायटी द्वारा श्री अमृतसर में 'यतीमखाना' के नाम से चलाई जा रही है। इसमें अनाथ बच्चों का पालन-पोषण और पढ़ाई का इंतजाम होता है। यहां धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ संगीत भी सिखाया जाता है। इस संस्था में नेत्रहीन लोगों की शिक्षा का भी उचित प्रबंध है। इस संस्था ने कई दृष्टिहीन रागी सिंघ तैयार किए हैं। ये लोग आज आर्थिक रूप से दुनिया के मुहताज नहीं हैं।

लुधियाना में 'निरदोश' नामक स्कूल चलाया जा रहा है, जिसमें मंदबुद्धि बच्चों को शिक्षा दी जाती है। सवेरे उनको घरों से लाया जाता है और दोपहर बाद घरों को भेज दिया जाता है। पढ़ाई के साथ-साथ इनको हस्त कला भी सिखाई जाती है। सिलाई-कढ़ाई, ग्रीटिंग कार्ड, मोमबत्तियां, नैपकिन आदि बनाने का काम सिखाया जाता है। यह सब उनकी मानसिकता समझकर ही सिखाया जाता है। जब मैं उनके प्रिंसीपल से मिला तो उन्होंने बताया कि आम आदमी की समझ का लेवल ६० से ८० तक का होता है, लेकिन इन बच्चों का लेवल २० तक का है, जो आम ज़िंदगी जीने के लिए काफी नहीं। कुछ बच्चे तो समझदार हो जाते हैं, यहां तक कि टी-स्टाल वगैरा चला लेते हैं, पर सभी नहीं। उन्होंने बड़े पते की बात कही कि यहां रहकर वास्तव में भगवान याद आता है। ये बच्चे निश्छल, निष्कपट होते हैं। ये आपस में लड़ते नहीं, प्रेम ही इनकी भाषा है। इस स्कूल के बारे में एम. एड. के पाठ्यक्रम में एक चैप्टर भी है। सालाना समारोह में इनको खेलों में भाग लेना होता है। ये उसे बाखूबी निभाते हैं। जब इनके यहां खेल होते हैं तो पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका के बच्चे भी इसमें भाग लेते हैं। इनकी दुनिया रंगीन है। अध्यापक इनकी मानसिकता समझने वाले और तजुर्बेकार हैं। इस स्कूल को कोई सरकारी मदद नहीं मिलती। इसे अमीर घरों की समाजसेवी महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा है। समस्या इनकी भी आर्थिक पक्ष से कमज़ोर होना है। लोगों द्वारा दिए दान से ही चल रही यह संस्था लुधियाना की पॉश कॉलोनी सराभा नगर में है।

यहां के ही टैगोर नगर में गूंगे-बहरे बच्चों का स्कूल चलाया जा रहा है, जिसमें १७५ बच्चे हैं। इसको चलाने वाली मैडम सुवर्षा कालड़ा हैं, जिनकी सेवा-भावना तथा सेवा-कार्यों को देखते हुए उनको भगत पूरन सिंघ

की 'बहन' ही कहा जा सकता है। होसटल में ८७ बच्चे हैं। ये इनको १३ वर्ष तक रखते हैं तथा इंटरमीडिएट तक की पढ़ाई करवाते हैं। कार्पोरेशन में इनको नौकरी प्राथमिकता के आधार पर मिलती है। यह संस्था भी किसी प्रकार की सरकारी मदद से महरूम है। इंसानियत के दर्द को समझने वाले ही इसकी मदद करते हैं। उन्होंने बताया कि ये बच्चे टी. वी. पर देखकर ही क्रिकेट सीख गये हैं और देश की सभी स्टेटों में खेलने जाते हैं। अब तक बस, एक हरियाणा राज्य से ही हारे हैं। बेशक इनको सुनता नहीं, ये बोल नहीं सकते, मगर हर बात को समझते बहुत जल्दी हैं। ये बड़े ही शार्प दिमाग के हैं। जवान बच्चों का ज्यादा ख़्याल रखना पड़ता है। इन बच्चों के मां-बाप पर मैडम को आक्रोश इसलिए है कि वे लोग इतना भी नहीं करते कि छुट्टियों के दिनों में ही इन बच्चों को घर ले जायें ताकि इन्हें भी अपनों का एहसास होता रहे। ऐसे समाजसेवी लोगों का हम जितना भी सत्कार करें कम है, जिन्होंने अपनी ज़िंदगी, अपनी खुशियां, अपने सपने सब न्यौशावर कर दिये। गूंगे व बहरे बच्चों को जीने के काबिल बनाने वाली इस 'मां' को मैं सत्कार भेंट करता हूं जिसने खुद किसी बच्चे को भी जन्म नहीं दिया, मगर उनके पास इस वक्त १७५ बच्चे हैं, जो इनके साये में पल रहे हैं, बड़े हो रहे हैं, जीने के काबिल बन रहे हैं। यह 'मां' अपना हरेक फर्ज अच्छे ढंग से पूरा कर रही है। ८५ साल की आयु के बावजूद उनके चेहरे के भाव बताते हैं कि वो ज़िंदगी से पूर्णतः संतुष्ट है।

ऐसे ही एक अन्य मंदबुद्धि स्कूल में मैंने भ्रमण किया। इस संस्था को चला रही बीबा सतवंत कौर से मैं मिला। इस पाठशाला में लगभग ५०-६० बच्चे हैं। जो पढ़ने के काबिल थे उनको अध्यापक पढ़ा रहे थे। कुछ कुर्सियों पर ऐसे बैठे थे कि बस, बुत ही लगते थे। उनको घरों से वैन पर लाया जाता है, नाश्ता और लंच खिलाकर घर छोड़ दिया जाता है। कुछ बच्चे थे जिनके पास सेवादार बैठे थे, जो उनका ख़्याल रख रहे थे। यह स्कूल किराये के मकान में चल रहा है। इसकी चारदीवारी नहीं है। इन बच्चों का खर्च ५० से ६० हज़ार प्रति महीना है, जो पक्के दानी सज्जनों से मिलता है। वैन किसी एक सज्जन ने पैसे इकट्ठे करके लेकर दी है। उन्होंने बताया कि सरकारी मदद के लिए बहुत कोशिश की जा रही है, दफ्तरों के चक्कर लगाए जा रहे हैं, पर सफलता नहीं मिल रही। एक सांसद ने कुछ राशि दी थी जो इमारत बनवाने के लिये थी। जगह अभी इनके पास नहीं है, इसलिए उसका इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। बीबा सतवंत कौर से जब मैंने इस तरफ आने के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं स्कूल में पढ़ाती थी। एक दफा मुझे ऐसे बच्चों को संभालने का मौका मिला। तब से मैंने सोच लिया कि ऐसे बच्चों की ही सेवा करनी है। वे एम. ए., बी. एड. हैं। उनका पति और बच्चे आस्ट्रेलिया में हैं। वर्ष में दो-तीन महीने के लिए वे अपने परिवार में जाती हैं, बाकी समय यहां ही बिताती हैं। यह सेवा उनको परमात्मा ने दी है, यह उनका कहना है, वरना वो भी आस्ट्रेलिया में होती। मैं उनको देखकर यह सोचता हूं कि हे प्रभु, तेरे ऐसे जीव भी हैं जो दूसरे लोगों के लिए ही जीते हैं। जब सारी दुनिया पैसा कमाने के लिए व्याकुल है, ऐसे में इन लोगों का धर्म केवल सेवा है। ये लोग पैसे के लिए नहीं, शोहरत के लिये नहीं, ये तो मानवता के लिए जी रहे हैं। इस

'मां' को इसके इन 'बच्चों' के लिए मकान शीघ्र मिले मेरी यही कामना है।

एक अन्य संस्था डॉ. कुटबिस अस्पताल, लुधियाना में मैं गया जहां १५ साल की उम्र के बच्चे नशा छुड़ाने के लिए दाख़िल थे। ये हमारे देश का भविष्य हैं। इन्हें देखकर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि हमारे बच्चे यहां तक पहुंच गये हैं। जब इनके बारे में और बात की तो संस्था में कार्यरत डॉक्टर साहिब ने बताया कि पहले अस्पताल में नशा छुड़वाने वाले लोग ३५ साल से ५५ साल आयु तक के लोग आते थे, मगर अब तो १५ साल तक के युवा भी आ रहे हैं। यह बात सुनकर तो मैं सन्न रह गया।

समाज-सेवा तथा बच्चों की बेहतरी के लिए जो भी संस्थाएं चल रही हैं हमारी उनके साथ सहानुभूति है। ऐसी संस्थाएं लगभग हर शहर में हैं। इनकी समस्याएं सबकी लगभग एक जैसी हैं। समस्याओं से जूझना ये सब लोग जानते हैं। इनके कार्यों में परमात्मा भी इनकी मदद करता है, इंसान तो करते ही हैं। संस्थायें चलाने वाले कर्मयोगी हैं। इनके हौसले बुलंद हैं।

कोई भी नास्तिक व्यक्ति ऐसी संस्था नहीं चला सकता, प्रभु में विश्वास रखने वाले ही यह सेवा कर सकते हैं। हर धर्म में मिशनरी (प्रचारक) लोग हैं जो बच्चों में प्रभु के प्रति प्यार की भावना पैदा करते हैं, इंसानियत के गुणों को उनमें प्रवाहित करते हैं।

इस सबके बावजूद कई ऐसी संस्थाएं हैं, जिनके गलत कार्यों के बारे में मीडिया में आए दिन ख़बरें आती रहती हैं, जो बहुत ही चिंता का विषय है। बच्चों के नाम पर इकट्ठे किये हुए धन का गलत प्रयोग करना, बच्चों का यौन शोषण तथा शारीरिक उत्पीड़न जैसी अनगिनत घटनाएं इंसानियत को शर्मसार करती हैं। वाहिगुरु इन लोगों को सद्बुद्धि दें।

ऐसी संस्थाओं में पल रहे अनाथ, बेबस, मज़बूर बच्चे हरेक की हमदर्दी के पात्र हैं। हम सभी अपनी जरूरतों को थोड़ी-सी कम करके इनकी ख़ुशियों का भी सोचें। इनकी खामोश दुआएं हमारी ज़िंदगी में जरूर रंग लायेंगी। हमारा सबका यह फर्ज भी बनता है, क्योंकि गुरु जी का हुक्म है :

घालि खाइ किछु हथहु देइ ॥
नानक राहु पछाणहि सेइ ॥ (पन्ना १२४५) ۞

बच्चों के स्वास्थ्य सम्बंधी ज़रूरी बातें (पृष्ठ ७९ का शेष)

के लिए लाभदायक है वहीं इसे पचाने और पाचन-प्रणाली को दुरुस्त रखने के लिए, शरीर को फिट रखने के लिए जरूरत है कसरत की। बच्चे यदि सारा दिन किताबें पढ़ने, कम्प्यूटर पर आंखें गढ़ाए रखने तथा देर रात तक टी.वी. पर नाटक, फिल्म, मैच आदि देखने में लगे रहें और किसी प्रकार का शारीरिक श्रम या कसरत न करें, सुबह या शाम के समय सैर भी न करें तो उनका खाया भोजन सही तरीके से नहीं पच पाता। इससे शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। संतुलित भोजन के साथ-साथ जरूरत है किसी प्रकार का कोई खेल खेलना, जौगिंग करना, दौड़ना, साइकिल चलाना या कोई अन्य सुविधाजनक कसरत करना। संतुलित तथा पौष्टिक खुराक लेना, कसरत करना, शारीरिक श्रम करना के अलावा स्वस्थ, सुंदर, निर्मल, उत्साहपूर्ण एवं आशावान विचार बच्चों के शरीर को स्वस्थ और मन को सुंदर बनाते हैं। ۞

बढ़ाएं बच्चों का आत्मविश्वास

-*सुश्री रंजना माथुर**

बच्चे के जन्म के साथ ही हर मां यह सोचने लगती है कि उसका बच्चा सुसंस्कारित हो, समझदार हो और होशियार हो तथा बड़ा होकर कुछ कर दिखाने के योग्य बने। इसके लिए वह तन-मन-धन से हमेशा प्रयासरत रहती है। समय पर खाना, पीना, सोना, पढ़ना, बड़ों का सम्मान करना, सत्य बोलना, सलीके से बातचीत करना आदि विषयों को लेकर वह अपने बच्चे को हमेशा कुछ न कुछ बताती रहती है, सिखलाती रहती है। इनसे हटकर कुछ ऐसे गुण भी हैं जिन पर ध्यान ही नहीं जाता या कभी-कभी जान-बूझकर उन्हें नज़रअंदाज कर दिया जाता है, जबकि जीवन में उनका काफी महत्त्व होता है।

आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्णय : बालक के समुचित विकास के लिए अनेक गुणों के साथ-साथ आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्णय का गुण भी अत्यावश्यक है। प्राय: बालक में आत्मविश्वास का गुण होता है। यदि किसी भी बालक से पूछा जाए कि क्या वह अमुक कार्य कर सकता है तो वह कभी नकारात्मक उत्तर नहीं देगा, वरन यही कहेगा, "हां, क्यों नहीं कर सकता! यह काम तो बिलकुल सरल है।" हम यह सोचकर कि अभी इसकी उम्र ही क्या है, इसके अभी काम करने के दिन नहीं हैं, खेलने-खाने के दिन हैं, उसे वो कार्य करने से मना कर देते हैं। कभी-कभी कार्य के थोड़ा भी जोख़िमपूर्ण होने पर हम बालक से कह देते हैं, "कभी मत करना यह काम, इससे यह हो जायेगा, वो हो जायेगा आदि-आदि।"

इन बातों से बालक का आत्मविश्वास बढ़ने की बजाय कमज़ोर होता जाता है, उसकी काम करने की आदत खत्म हो जाती है और हर कार्य के लिए वह दूसरों पर आश्रित रहने लगता है। बड़े होकर भी ऐसे बालक स्वविवेक से कोई कार्य नहीं करना चाहते और दूसरों की सलाह ज्यादा अच्छी मानकर ही कार्य करते हैं, चाहे उससे उनका स्वयं का अहित ही हो।

बालक में आत्मविश्वास के गुण को विकसित करने के लिए जरूरी है कि किसी भी कार्य के प्रति उसके विश्वास को और बढ़ाया जाये। यदि कार्य कुछ कठिन प्रकृति का है या जोख़िमपूर्ण, तो उसे कार्य-विधि समझा दी जाए, सावधानियों से अवगत करा दिया जाये और कार्य करते समय उस पर पूरी निगरानी रखी जाये। कार्य में गलती हो जाने पर डांट-फटकार या निराशाजनक शब्दों की बजाय उसे प्रेम से पुन: वह कार्य करने के लिए उत्साहित किया जाये और भविष्य में सफलता प्राप्त होने का आश्वासन दिया जाये।

आज के चुनौतीपूर्ण जीवन को देखते हुए बालक में प्रारंभ से ही आत्मनिर्णय का गुण होना आवश्यक है। अच्छा क्या है, बुरा क्या है, परिस्थिति विशेष में उसे कब और क्या करना चाहिए आदि के बारे में वह स्वयं निर्णय कर सके, ऐसी परिस्थितियां उसके समक्ष रखनी

**ए-१११, भगवती नगर (प्रथम), रावजी का बाग, करतारपुर, जयपुर (राजस्थान)*

चाहिए। किसी कार्य से उसे क्या नुकसान होगा, क्या फायदा होगा, इसका भी उसे ज्ञान करवाना चाहिए।

कुछ कार्य बालक को स्वयं के विवेक से करने देना चाहिए, हमेशा उस पर अपने आदेश, अपनी इच्छाएं नहीं थोपते रहना चाहिए। छुट्टी के दिन बालक अपनी इच्छा से यदि अपने अध्ययन-कक्ष की सफाई कर रहा है, कुर्सी-मेज साफ कर रहा है तो उसे करने दो। इसी तरह बालक को उसकी आवश्यकता की वस्तुएं, उसी की पसंद की खरीदने का अधिकार देना चाहिए। उदाहरणत: बालक को स्कूल बैग दिलवाना है। दुकान पर अपको लाल रंग का बैग अच्छा लग रहा है, किंतु बालक पीले रंग का बैग चाहता है तो कीमत और किस्म का स्वयं निर्णय करते हुए उसे पीले रंग का ही बैग दिलवाएं। हमेशा आदेश देकर कार्य करवाने से या अपनी इच्छाएं बालक पर लादते रहने से बालक परावलम्बी हो जाता है और हर कार्य करने से पहले आदेश तथा मार्गदर्शन की प्रतीक्षा करता है।

भीरु होने से बचाएं : कई बालक साधारण परिस्थितियों में भी काफी भयभीत हो जाते हैं और डर के कारण रोने-चिल्लाने लगते हैं। भीरु प्रकृति के बालकों को आगे जीवन में कई परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। अत: बच्चों को प्रारंभ से ही भीरु प्रकृति का होने से बचाएं।

भय या डर वास्तव में किसी परिस्थिति विशेष के बारे में मिथ्या भ्रम है, जैसे घर में अकेला होने पर डरना या अंधेरे में डरना आदि। बालक को डरपोक होने से बचाने के लिए उसके मिथ्या भ्रम को दूर करना चाहिए। उसे उस परिस्थिति विशेष, जिससे वह डर जाता है, से अवगत कराना चाहिए तथा उसके अज्ञान को दूर करना चाहिए। अंधेरे में डरने वाले बच्चों का मज़ाक बनाने की बजाय या डांटने की बजाय उसे अंधेरे में ही ले जाकर समझाना चाहिए-- "बताओ अंधेरे में तुम्हें क्या हो रहा है? क्या तुम्हें कोई पकड़ रहा है या पीट रहा है?"

प्राय: देखने में आता है कि माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्य स्वयं को किसी परेशानी से बचाने के लिए या बालक के किसी प्रकार की ज़िद करने पर उसे भय दिखाते हैं-- "चुप रह, नहीं तो भूत आ जायेगा; 'बाबा' को पकड़ा देंगे।" ऐसी स्थिति में बालक चुप तो हो जायेगा और उस समय ज़िद भी नहीं करेगा किंतु वह भूत और 'बाबा' की कल्पना कर-करके अत्यधिक भीरु प्रकृति का हो जायेगा। व्यर्थ में बालक को जान-बूझकर डरपोक न बनायें, बल्कि ज़िद नहीं करने के लिए समझाएं।

('पंजाब सौरभ' से आभार सहित)



छिन रही है बचपन की मासूमियत

*-श्री प्रशांत अग्रवाल**

आजकल अक्सर देखने में आता है कि मां-बाप अपने नन्हे-मुन्नों की तेजी, होशियारी आदि का बखान बड़े गर्व से करते हैं और अक्सर कहते सुने जाते हैं कि यह बच्चा तो बड़ों-बड़ों के कान काट लेता है। इन सब बातों और आधुनिक परिवेश में पल रहे बच्चों को देखकर क्या ऐसा नहीं लगता कि आज के बच्चे अपना भोलापन, मासूमियत, सरलता खोते जा रहे हैं?

बच्चों का भोलापन कम होने के कारण भी अनेक हैं। मां-बाप की महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ, औरों की देखा-देखी अपने बच्चे को भी गलाकाट प्रतिस्पर्धा में झोंकना, टी. वी./फिल्मों से मिलने वाले कुसंस्कार, भोले बच्चों के सामाजिक शोषण में वृद्धि, बच्चों के भोलेपन को बेवकूफी-दब्बूपन की संज्ञा देने की आधुनिक प्रवृत्ति आदि अनेक कारण हैं जिनसे बचपन की मासूमियत छीनी जा रही है।

बड़ों की कारगुजारियों से त्रस्त मानव समाज अब क्या बच्चों की मासूमियत, सरलता से भी वंचित हो जायेगा? क्या 'बालकोचित स्वभाव', 'बच्चे भगवान का रूप होते हैं', 'बच्चे मन के सच्चे', 'बच्चों की नादानियां' जैसी संज्ञाएं, विशेषण, वाक्य यूं ही अपना महत्त्व खोते जायेंगे? बच्चों से उनका बचपन छीनकर हमारा समाज कोई अच्छा काम नहीं कर रहा है।

समाज-परिवर्तन में बच्चे अहम : कच्ची मिट्टी को तो मनचाहा आकार दिया जा सकता है किंतु पके हुए घड़े का आकार बदलना असंभव है। मनुष्य की आदतें भी अवस्था बढ़ने के साथ-साथ पक्की होती जाती हैं। चूंकि घड़े के विपरीत मनुष्य एक सचेतन प्राणी है, इसलिए उसकी आदतों को बदलना असंभव तो नहीं है किंतु कठिन अवश्य है। ऐसे में दृष्टि जाती है कच्ची मिट्टी के समान अनगढ़ उन बच्चों पर, जिन्हें संस्कारों के सांचे में ढालकर भावी स्वर्णिम राष्ट्र के नायक बनाया जा सकता है।

ऐसे में आहवान है समाज-सुधार के सभी आकांक्षियों का कि वे अपनी जितनी ऊर्जा, समय व पैसा पक्के और चिकने घड़ों को बदलने में लगाते हैं, उसका अधिकाधिक हिस्सा बच्चों को संस्कारित करने में लगायें। हो सकता है कि ऐसे प्रयास तत्काल फलदायी न हों, किंतु दीर्घकालीन स्वर्णिम वट वृक्ष के बीजारोपण तो सिद्ध हो ही सकते हैं।

जब बड़ी-बड़ी विज्ञापन एजेंसियां भी अपने उत्पादों के प्रचार-प्रसार में बच्चों का महत्त्व जानती हैं तो हम समाज-सुधार व देश के निर्माण में बच्चों की परवरिश के ढंग को अनदेखा कैसे कर सकते हैं? यदि उपभोक्तावाद के प्रसार हेतु बच्चों को बहकाया जा सकता है तो समाज-सुधार व राष्ट्र-निर्माण के पवित्र उद्देश्य से उनको संस्कारित भी किया जा सकता है।

उन्हें अच्छे संस्कार देने वाली रोचक पुस्तकें, चित्र आदि भेंट किए जायें, बतौर

***४०, बजरिया मोतीलाल, बरेली-२४३००३ (उ. प्र.)। मो. : ०९४११६०७६७२*

पुरस्कार दिए जाएं, संस्कारवान कार्यक्रमों, चर्चाओं की ओर प्रेरित किया जाए, आदर्श महापुरुषों, देश-भक्तों, बलिदानियों की गौरव-गाथाओं से सम्बंधित प्रश्नोत्तरी आयोजित की जाए, उनके प्रति गौरव-बुद्धि विकसित की जाए। साथ ही अपनी ओर से यथासाध्य शुद्ध एवं सात्विक आचरण करके संस्कारवान परिवेश बनाए रखा जाए, क्योंकि बच्चों पर उपदेश से भी अधिक असर पड़ता है आचरण का, क्योंकि वे अनुकरण-पद्धति से अधिक सीखते हैं। ऐसा करके हम बच्चों का ही नहीं बेहतर समाज व राष्ट्र का भविष्य तैयार करेंगे।

बचपन कच्ची मिट्टी जैसा

आज बड़ा ही विषम काल है, अंधकार है छाया।
भोगवाद की विकृतियों का, बचपन पर भी साया।
कलुष भरे टी. वी.-फिल्में या 'हाईटेक' संसाधन।
कहने को करते 'मन-रंजन', पर भटकाते हैं मन।
स्वस्थ मनोरंजन के साधन, नहीं पहुंच से दूर।
लेकिन कुंठित सोच हो रही, भेड़-चाल में चूर।
ऐसे में तो यही राह, बच्चों से आशा पालें।
निर्विकार भोले मन में, संस्कार सात्विक डालें।
बालक-मन होता है कोमल, कच्ची मिट्टी जैसा।
जैसा हम आकार देंगे, बन जायेगा वैसा।
मिट्टी पर जो बने रेख, पकने पर पक्की होती।
बचपन में जो पड़े छाप, ताउम्र चित्त पर रहती।
बच्चे ही आगे चलकर, भावी समाज गढ़ते हैं।
बचपन के संस्कार-बीज, आगे जाकर फलते हैं।
जितना पैसा-समय-ऊर्जा, जन-सुधार में लगता।
फिर भी चिकने घड़ों के ऊपर, असर नहीं कुछ पड़ता।
उतने संसाधन से यदि हम, दें बच्चों पर ध्यान।
बड़ा सार्थक होगा ऐसा, 'जड़-सुधार' अभियान।
भले नहीं तत्काल मिलेगा, इस प्रयास का फल।
किंतु इन्हीं आधारों पर, विकसेगा स्वर्णिम कल।
एक और है खास बात, उपदेश असर कम करता।
बच्चा सीखे देख-देखकर, असर आचरण करता।
अतः स्वयं आदर्श बनें हम, संस्कार फिर डालें।
गढ़ें नींव के पत्थर हम, यश की इच्छा न पालें।

कम्प्यूटर, वीडियो गेम व मोबाइल फोन के दुरुपयोग की मार तले बच्चे

- *डॉ. अंजुमन**

घरों में अक्सर हमारे बुजुर्ग कहते सुने जाते हैं कि "हम तो घर का काम ही करते रहते थे, बच्चे पता नहीं कब बड़े हो गये!" उनका यह भी कहना है कि "हमें तो घर के काम-काज से ही फ़ुरसत नहीं मिलती थी हम बच्चों को कैसे पढ़ाते?"

पहले बात और हुआ करती थी क्योंकि परिवार संयुक्त एवं बड़े हुआ करते थे। आज 'हम दो और हमारे दो' होते हुए भी हमारे पास बच्चों के लिए समय की न्यूनता है। बच्चों को व्यस्त रखने के लिए हमने विभिन्न आधुनिक यंत्रों का सहारा ले लिया है, जैसे-- कम्प्यूटर, वीडियो गेम, मोबाइल फोन आदि। आज की दिनचर्या यह है कि बच्चे को नहलाया, खाना खिलाया और फिर ऐसे किसी यंत्र के हवाले कर दिया, बच्चा भी मस्त और हम भी आज़ाद।

आजकल १०-१२ वर्ष से ऊपर हर बच्चे के पास मोबाइल फोन है। परिवार में जितने सदस्य उतने फोन तो हैं ही। यहां मैं बच्चों को नहीं बल्कि माता-पिता को बताना चाहती हूं कि हम सब बहुत सियाने हैं और अपने बच्चों का भला-बुरा सब जानते हैं। एक-दो ही तो हमारी संतानें हैं। इनको घर-परिवार का सारा सुख देने में हम क्यों आनाकानी कर रहे हैं? आज तो मोबाइल फोन भी एक मीठा ज़हर ही है। इसके ज़हर (कुप्रभाव) को न तो हम देख सकते हैं, न ही महसूस कर सकते हैं और न ही सुन सकते हैं। जहां भी इस फोन के टॉवर लगे हैं वहां ५० से ३०० मीटर तक का घेरा रेडिएशन ज़ोन के घेरे में आता है जिसके कारण सिर दर्द, थकान, दिमाग में सूजन, कम सुनना, गर्भपात आदि जैसी बीमारियां घर कर रही हैं। पक्षियों की कई जातियां आलोप हो रही हैं। इन टॉवरों में से निकलने वाली तरंगें मनुष्य के शरीर के तापमान को बढ़ा देती हैं जिनसे मृत्यु भी हो सकती है।

कम्प्यूटर और वीडियो गेम भी इसी का हिस्सा हैं। सोचा जाए तो बच्चों को छोटी आयु में ही कम्प्यूटर ज्यादातर हम देखादेखी के चलन के तहत ही लेकर देते हैं। अक्सर देखा गया है कि घर में कम्प्यूटर या मोबाइल पर इंटरनेट चलता होने की बात माता-पिता को भी नहीं पता होती। याद रखा जाए कि इंटरनेट का लाभ लेने के साथ-साथ कई बार बच्चे इसके विपरीत प्रभावों का भी शिकार हो जाते हैं। माता-पिता को इस बात का अवश्य ख़्याल रखना चाहिए।

बच्चों के बढ़िया पालन-पोषण के साथ-साथ यह देखना भी अनिवार्य है कि बच्चा किनके साथ क्या खेलता है; कौन-कौन सी फिल्में, गेमज़, तस्वीरें, प्रोग्राम उसने कम्प्यूटर में भरे हैं। किस चीज का कब, कैसे और कितना प्रयोग करना चाहिए, यह भी उसे बताना चाहिए। कई बार संगत में पड़कर बच्चे छोटी आयु में ही वे सब सीख जाते हैं, जो उन्हें

(शेष पृष्ठ ९२ पर)

**गांव : धौलपुर, डाकघर : तलवंडी लाल सिंघ, तह : बटाला, ज़िला गुरदासपुर-१४३५०५, मो. ९९८८१-९८६१६*

सेलफोन का प्रयोग और इनके रेडिएशन का खतरा

*-स. सुरजीत सिंघ**

आज के वैज्ञानिक और भौतिकवादी युग में यह प्रमाणित सत्य है कि सिक्ख धर्म और विज्ञान एक दूसरे में समाहित हैं, क्योंकि गुरबाणी का आध्यात्मिक विधान वैज्ञानिक विधि को मार्गदर्शन प्रदान कर सत्य शाश्वत मूल्यों के पथ पर अग्रसर हो ईश्वर तक सीधा-सीधा पहुंचता है। विश्व के वैज्ञानिक निरंतर ब्राह्मांड, प्रकृति, जीव-जीवन, वनस्पति इत्यादि विषयों पर जो खोज कर रहे हैं उसे श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी दिव्य दृष्टि और दिव्य बाणी से ५ शताब्दी पूर्व ही सिद्ध कर दिया था कि गुरबाणी और विज्ञान एक दूसरे के लिए हैं। एक ही आकाश, पाताल, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा की पूर्वकाल से चली आ रही भ्रमित धारणा को नकारते और खंडन करते हुए श्री गुरु नानक देव जी ने सर्वप्रथम स्पष्ट शब्दों में उच्चारित किया था :

पाताला पाताल लख अगासा आगास ॥
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ॥ . .
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ॥

(पन्ना ७)

पांच शताब्दी पूर्व उच्चारित गुरबाणी के शब्दों को वैज्ञानिकों ने समयानुसार सिद्ध कर दिखाया है कि एक नहीं अनगिनत पाताल, आकाश, मंडल, सूर्य, चंद्रमा विद्यमान हैं। गौरवान्वित है कि अमेरिका देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्था 'नासा' में श्री गुरु ग्रंथ साहिब का आदर-सत्कार सहित प्रकाश हो रहा है जहां वैज्ञानिक अध्ययन कर विभिन्न खोजों के माध्यम से प्रमाणिकता सिद्ध कर रहे हैं।

भारत में मोबाइल, कम्प्यूटर, वीडियो क्रांति अधिक पुरानी न होकर दो-तीन दशक पुरानी ही है किंतु सेलफोन टेक्नोलॉजी के प्रचार-प्रसार की गति पिछले एक दशक से इतनी अधिक तीव्र हो गई है कि आज देश में लगभग ७० करोड़ उपभोक्ता बालक से लेकर वृद्ध तक, पुरुष हो अथवा महिला, मोबाइल का इस्तेमाल कर रहे हैं जो देश भर में फैले लगभग ५ लाख ४० हज़ार सेल-टॉवरों के विशाल नेटवर्क से जुड़े हुए हैं। इलेक्ट्रोमेग्नेटिक उपकरणों के माध्यम से सूक्ष्म तरंगों के रूप में निकलने वाली ऊर्जा; जिसे तकनीकी भाषा में माइक्रोवेव रेडिएशन कहा जाता है, के कुप्रभाव भी कम नहीं हैं। कम्प्यूटर, वीडियो की स्क्रीन के सम्मुख निरंतर घंटों तक एक टक लगाये बैठे रहने से नेत्रों की ज्योति क्षीण होती चली जाती है एवं शरीर में पाचन-क्रिया पर असर पड़ने से मोटापा पनपने लगता है, जिससे रक्तचाप एवं हाईपरटेंशन जैसे रोगों की संभावना अधिक हो जाती है। यह कहना उचित होगा कि चाहे छोटे से छोटा गांव हो अथवा बड़े से बड़ा शहर किंतु इलेक्ट्रोमेग्नेटिक उपकरणों द्वारा उत्पन्न रेडिएशन के प्रभावों से कोई बचा हुआ नहीं है।

आदर्श, अनुकरणीय, श्रद्धा की प्रतीक, गौरवशाली, प्रेरणामूर्त गुरबाणी एवं गुरु-इतिहास की उपेक्षा कर आज का भौतिकवादी युवा वर्ग धन-दौलत, वैभव, ऐश्वर्य और विलासता में निरंतर डूबता जा रहा है जिस कारण चारों

**५७-बी, न्यू कालोनी, गुमानपुरा, कोटा (राज.)-३२४००७, मो. ९४१३६-५१९१७*

ओर अनेकानेक विकृतियां, हाहाकार और समस्याओं का पनपना स्वाभाविक है। परिवर्तन की प्रक्रिया, में आधुनिक बनने के चक्कर में आज के युवा वर्ग द्वारा पुरातन आदर्श संस्कृति को इस प्रकार तिलांजलि दी जा रही है मानो वह अवांछनीय और अछूत हो गयी हो। भारतीय संस्कृति, मानवता, देश-धर्म की रक्षा हेतु श्री गुरु अरजन देव जी, श्री गुरु तेग बहादर साहिब की महान शहादत, श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी सर्वत्याग-सरवंशदान, माता गुजरी जी एवं चारों साहिबज़ादों के अद्वितीय, गौरवशाली एवं विश्वव्यापी बलिदानों को ही भुलाया जा रहा है।

आज समाज में 'संयुक्त परिवार प्रणाली' की अधिकतर समाप्ति और 'एकल परिवार' की पनप रही प्रवृत्ति के कारण युवा वर्ग अपने आप स्वतंत्र-एकल जीवन जीने को लालायित है, क्योंकि आज के युवा वर्ग को जमीन पर टिकना ही पसंद नहीं है। वह तो हर क्षण ज़मीन के ऊपर ही उड़ना चाहता है। वृद्ध माता-पिता हमारे आदर्श हैं जो मानव-आदर्श संस्कृति के वाहक हैं। अनेकानेक अनुभवों के अतिरिक्त उनके पास वह स्नेहमयी आंचल है जिसके साये में रहकर युवा वर्ग निरंतर प्रगति कर सकता है, किंतु भूलवश वृद्ध-जनों को घर से बेघर कर वृद्धाश्रम पहुंचा आज का युवा वर्ग नि:संकोच धर्म-संस्कृति-विहीन होता जा रहा है।

सेलफोन, कम्प्यूटर एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण तेज रफ्तार ज़िंदगी के लिए वरदान अवश्य हैं किंतु इनसे निकलने वाले घातक रेडिएशन से कैंसर, रक्तचाप, हार्टअटैक, नपुंसकता, गर्भपात, ब्रेन-ट्यूमर, स्मरण-शक्ति, एकाग्रता में कमी, नेत्रों से कम दिखाई देना, आंसू टपकना, कानों से कम सुनाई देना एवं चिड़चिड़ापन जैसे व्यापक रोग होने की संभावना अधिक हो जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम इलेक्ट्रॉनिक रेडिएशन उत्पन्न करने वाले उपकरणों का इस्तेमाल करना बंद कर दें अथवा उन्हें त्याग दें जो कि आज के तेज रफ्तार आधुनिक युग में उचित भी नहीं कहा जा सकता और संभव भी नहीं है।

भारत सरकार द्वारा जारी अध्यादेश, जो १ सितंबर, २०१२ ई से लागू हो गया है, के अनुसार समस्त 'मोबाइल सेवा प्रदाता कंपनियों' को अपने सेलटॉवरों का रेडिएशन स्तर ४.५ वॉट प्रति वर्गमीटर से घटाकर ०.४५ वॉट प्रति वर्गमीटर कर देने को कह दिया गया है अर्थात् पहले से १० गुना तक कम रेडिएशन। विशेषज्ञों का मानना है कि रेडिएशन का स्तर ०.४५ वॉट प्रति वर्गमीटर से भी कम होना चाहिए, क्योंकि विश्व के कुछ देशों में रेडिएशन का स्तर ०.०००१ वॉट प्रति वर्गमीटर तक ही है।

चिकित्सीय वैज्ञानिकों के अनुसार २० मिनट तक निरंतर सेलफोन का इस्तेमाल करते रहने से माइक्रोवेव रेडिएशन से कान गर्म होने लग जाता है जिससे कान के निचले हिस्से में खून का तापमान १.८० डिग्री फॉरनहाइट अर्थात् १.०० डिग्री सेंटिग्रेड तक बढ़ जाता है। सामान्यतया मानव शरीर का तापमान ९८.४ डिग्री फॉरनहाइट रहता है। सेलफोन के माइक्रोवेव रेडिएशन के थर्मल प्रभाव से कान के निचले हिस्से में बढ़े हुए तापमान १.८० डिग्री फॉरनहाइट को यदि जोड़ दिया जाये तो सामान्य मानव शरीर के प्रभावित हिस्से का तापमान ९८.४ डिग्री फॉरनहाइट से बढ़कर १००.२ डिग्री फॉरनहाइट हो जाएगा जिसे मेडिकल साइंस में बुखार की श्रेणी में रखा जाता है।

माइक्रोवेव ओवन में खाना पकाने के समान ही सेलफोन के थर्मल प्रभाव मानव शरीर पर पड़ते हैं और हीटिंग (गर्मी) के नियम भी उसी प्रकार से लागू रहते हैं। खाना पकाते समय जिस प्रकार पहले तरल पदार्थ

अथवा पानी गर्म होता है ठीक उसी प्रकार सेलफोन के माइक्रोवेव थर्मल रेडिएशन से मानव शरीर के वही हिस्से पहले गर्म होते हैं जहां तरल पदार्थ-- खून अथवा पानी अधिक रहता है। मानव शरीर की रचना अनुसार इसमें ७० प्रतिशत तक पानी होता है, यद्यपि मस्तिष्क में तो ९० प्रतिशत तक पानी विद्यमान है, इसलिए सेलफोन के रेडिएशन का कुप्रभाव हृदय, मस्तिष्क, नेत्र, कान, जोड़ पर अधिक पड़ता है। सेलफोन के रेडिएशन के कुप्रभाव बहुत लंबे समय अर्थात् १५ से २० वर्ष तक के अंतराल के उपरांत सामने आने लगते हैं किंतु तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

बच्चों के सिर-मस्तिष्क का छोटा आकार, कोमल त्वचा, नाजुक कान और विकसित होते शरीर के अंगों के कारण रेडिएशन का खतरा बड़ों की अपेक्षा बच्चों में सदैव अधिक बना रहता है, इसलिए उचित होगा कि १६ वर्ष से कम आयु के बच्चे आवश्यक होने पर ही सेलफोन का इस्तेमाल करें और वह भी सीमित समय के लिए ही।

जब हम सेलफोन का इस्तेमाल नहीं कर रहे होते हैं तब भी वह एक पल्स प्रति मिनट माइक्रोवेव रेडिएशन पैदा कर रहा होता है। यदि प्रतिदिन ६ घंटे सेलफोन को जेब में रखा जाये तो १ वॉट की ३६० पल्स ऊर्जा स्वत: ही पैदा हो जाएगी जिससे स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

प्रत्येक सेलफोन की 'एस. ए आर' निश्चित रहती है। मानव शरीर जितना माइक्रोवेव रेडिएशन बिना किसी क्षति के स्वाभाविक ग्रहण कर लेता है उसे हिंदी में 'विशिष्ट अवशोषण दर' एवं अंग्रेजी की संक्षिप्त भाषा में 'एस. ए आर' कहा जाता है। 'एस. ए आर' को वॉट प्रति किलोग्राम (ऊतक) से नापा जाता है। जितनी मानव शरीर की ताप-प्रतिरोधी क्षमता होती है, यदि सेलफोन माइक्रोवेव रेडिएशन द्वारा उससे कम गर्मी पैदा हो रही होती है तो मानव शरीर उस गर्मी को निष्क्रिय कर देता है किंतु यदि यह गर्मी मानव शरीर की क्षमता से १ से २ डिग्री सेल्सियस भी अधिक होगी तो उसका कुप्रभाव ऊतकों पर पड़ने लग जाता है। अमेरिका देश के समान ही भारत में भी सरकारी स्तर पर १.६ वॉट प्रति किलोग्राम 'एस. ए आर' सीमा स्वीकृत की हुई है। कहा जा सकता है कि जो सेलफोन १.६ वॉट प्रति किलोग्राम तक रेडिएशन पैदा कर रहे होते हैं वे मानव-शरीर के लिये हानिकारक नहीं हैं, किंतु यह मानक केवल ६ मिनट प्रतिदिन इस्तेमाल तक ही सीमित है। यदि सुरक्षात्मक गुणक ३ गुना अधिक तक भी मान लिया जाये तो १.६ वॉट प्रति किलोग्राम 'एस. ए आर' वाले सेलफोन से १ दिन में अधिकतम १८ मिनट तक बात की जा सकती है। यद्यपि भारत में सेलफोन का औसत इस्तेमाल १५ मिनट प्रतिदिन ही है, किंतु देखा गया है कि करोड़ों उपभोक्ता विशेषत: युवा वर्ग अनावश्यक मनोरंजन के लिए दिन में कई-कई घंटों तक सेलफोन का इस्तेमाल कर रहे हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे याददाश्त में कमज़ोरी, एकाग्रता में कमी एवं निद्रा में व्यवधान होने लग जाता है। सेलफोन रेडिएशन मानव त्वचा को शुष्क कर, नज़दीकी आंख में पानी सुखाने के अतिरिक्त कपाल को भेदकर दिमाग को गर्म करने में अवश्य सहायक बना रहता है।

यह बताना उचित होगा कि जर्मनी, इज़राइल, फ्रांस, रूस, बैल्ज़ियम, फिनलैंड इत्यादि देशों में सेलफोन के बढ़ते इस्तेमाल से, विशेषकर १६ वर्ष से कम आयु के बच्चों को रोकने के लिए सार्वजनिक अभियान चला रखे हैं, जिनकी भारत जैसे देश में भी अति आवश्यकता है। सेलटॉवर के रेडिएशन का कुप्रभाव मानव

शरीर के अतिरिक्त पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और पर्यावरण पर भी पड़ता दिखलाई देता है। सेलटॉवर के निकट अक्सर पक्षी नहीं बैठते और न ही उड़ते हैं, क्योंकि उनका कोमल शरीर सेलटॉवर की हीटिंग झेलने में सक्षम नहीं है। यह भी देखने में आया है कि सेलटॉवर के नज़दीक वाले पेड़-पौधों पर भी रेडिएशन के कारण कम फल लगते हैं।

इलेक्ट्रोमेग्नेटिक उपकरणों के इस्तेमाल के समय मानव शरीर को निम्नलिखित सावधानियां बरतते हुए किसी हद तक बचाया जा सकता है :--

१. रेडिएशन सेफ्टी उपकरणों का इस्तेमाल करके, जैसे मोबाइल कवर, मोबाइल पाउच, हार्टगार्ड, मोबाइल चिप, माइक्रोवेवऐप्रन, कम्प्यूटर सेफ्टी उपकरण, कॉस्मेटिक, फेब्रिक्स, डोमेस्टिक कवर इत्यादि।

२. इलेक्ट्रोमेग्नेटिक उपकरण इस्तेमाल करते समय आई एस. आई मार्का का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। सेलफोन का 'एस. ए आर' स्वीकृत सीमा से अधिक न हो। संभव हो तो हैंड सेट अथवा ईयरफोन का इस्तेमाल किया जा सकता है।

३. सेलफोन को वाहन चलाते समय अथवा बंद कमरे में इस्तेमाल न करें और रात्रि में सोते समय निकट अथवा तकिये के नीचे न रखें।

४. जब सिग्नल पूरे स्पष्ट और पर्याप्त हों तभी बात करने की कोशिश करें। अनावश्यक रूप से बारम्बार सेलफोन का इस्तेमाल करते रहना हानिकारक हो सकता है।

५. कम्प्यूटर, वीडियो इस्तेमाल करते समय स्क्रीन से सदैव उचित दूरी बनाये रखें। स्क्रीन कवर का उपयोग सुरक्षात्मक कवच का कार्य करता है।



कम्प्यूटर, वीडियो गेम व मोबाइल फोन. . . *(पृष्ठ ८८ का शेष)*

युवावस्था में पता चलना चाहिए था। कई बार बच्चे किशोरावस्था में ही कुछ ऐसे काम करने लग जाते हैं जो उन्हें जुर्म की दुनिया में ले जाते हैं। ऐसे में वे अपना और अपने देश का भविष्य अंधकार में डाल लेते हैं।

माता-पिता को विशेष ध्यान देना चाहिए कि उनके लाडले और लाडली की दुनिया, बचपन, जवानी, मानसिकता और शारीरिक तंदरुस्ती नष्ट न हो।

चाहे टेलीकॉम कंपनियां आई सी. एन. आई पी. का पालन करती हैं, जो कि ऊर्जा-घणता के लिए अंतर्राष्ट्रीय दिशा-निर्देश हैं, परंतु इन दिशा-निर्देशों का उद्देश्य ऊर्जा-प्रभाव को थोड़े समय के लिए कम करना है। जो लोग मोबाइल फोन का ज्यादा प्रयोग करते हैं उनको चक्कर आना, दिल की धड़कन तेज़ होना, नज़र कम होने की समस्या, सिर दर्द, थकावट आदि की शिकायत रहती है।

हमारा वातावरण पहले से ही बहुत प्रदूषित है। यह समस्या अभी सुलझी नहीं है। उस पर मोबाइल फोन का जरूरत से ज्यादा प्रयोग करने के कारण मनुष्य अपने आप को खत्म करने के साधन स्वयं ही संजोने लगा है।

हम लोगों को यह समझना चाहिए कि मोबाइल टॉवरों की तरंगें हमारे लिए जितनी हानिकारक हैं उतने ही बच्चों के लिए मोबाइल फोन नुकसानदेय हैं। समझदारी इसी में है कि मोबाइल फोन का उतना ही प्रयोग किया जाए जितनी जरूरत हो। हमें अपने स्वास्थ्य का स्वयं ही ध्यान रखना है।



'वार माझ की' का साहित्यिक मूल्यांकन

*-डॉ. निर्मल कौशिक**

श्री गुरु नानक देव जी युगदृष्टा, क्रांतिकारी, बाणीकार और समाज-सुधारक के रूप में भक्ति-कालीन निर्गुण परंपरा के युगपुरुष हैं। उन्होंने केवल कलम से ही समाज-सुधार एवं कुरीतियों को दूर करने का कार्य नहीं किया अपितु पैदल चलकर चार उदासियों (यात्राएं) द्वारा भी जन-जन तक पहुंच कर देश-विदेश के कोने-कोने से ईर्ष्या, द्वेष, आडंबर-पाखंड, अनीति एवं कुरीति को समूल नष्ट किया। उन्होंने केवल अपने सिद्धांतों का प्रचार ही नहीं किया, बल्कि उन लोगों को जो जनता को गुमराह कर ईश्वरीय मार्ग से भटका कर उन्हें लूटते थे, अपने तर्क प्रस्तुत कर सन्मार्ग पर लाने का सफल प्रयास भी किया। उन्होंने अपने ज्ञान-बल व अध्यात्म-बल से जो अनुभव अर्जित किए उन्हें अपनी बाणी में भी सम्मिलित किया। उन्होंने समय-समय पर अपने अनुभवों को जन-कल्याण हेतु लिपिबद्ध किया। श्री गुरु नानक देव जी की बाणी समस्त विश्व का मार्गदर्शन करने वाली है और कर रही है। श्री गुरु अरजन देव जी द्वारा श्री गुरु नानक देव जी की बाणी का अनेक गुरुओं, भक्तों, भट्टों आदि सहित संपादन श्री गुरु ग्रंथ साहिब के रूप में गुरु-स्वरूप हो गया और प्रकाश-स्तंभ की तरह मानवता का पथ आलोकित कर रहा है तथा करता रहेगा।

श्री गुरु नानक देव जी द्वारा रचित बाणी 'वार माझ की' श्री गुरु ग्रंथ साहिब के पन्ना १३७ से १५० तक शोभायमान है। इस वार की कुल २७ पउड़ियां हैं। प्रत्येक पउड़ी में ८-८ पंक्तियां सम्मिलित हैं। श्री गुरु अरजन देव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन करते समय 'वार माझ की' के साथ ४६ सलोक जोड़ कर यह बाणी संकलित की। श्री गुरु नानक देव जी की १४ पउड़ियों में उनके द्वारा रचित २९ सलोक जोड़कर, श्री गुरु अंगद देव जी विरचित १२ सलोक जोड़कर, श्री गुरु अमरदास जी के ३ सलोक तथा श्री गुरु रामदास जी के २ सलोक जोड़कर 'वार माझ की' को श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सुशोभित किया गया है।

भाई कान्ह सिंघ नाभा कृत 'महान कोश' के अनुसार 'वार' के कई अर्थ बताए गए हैं। वार का सामान्य अर्थ-- घेरा अथवा युद्ध है। युद्ध से सम्बंधित काव्य वह रचना है जिसमें शूरवीरता का वर्णन हो। गुरबाणी के संदर्भ में यह 'वार' शब्द 'पउड़ी' का अर्थ भी देता है। 'आसा की वार' के आरंभिक पाठ में 'वार सलोका नालि' में 'वार' शब्द पउड़ी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में करतार (ईश्वर) की महिमा-युक्त बाणी, जो पउड़ी-छंदों सहित सलोक मिलाकर लिखी गई है, 'वार' नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार 'वार' शब्द का अर्थ 'वार माझ की' के संदर्भ में रचना-शैली पउड़ी के अर्थ में ही उपयुक्त है।

इस वार के रचना-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। 'पुरातन जनम साखी' के आधार पर कुछ विद्वान इसके रचना-स्थान और काल के विषय में अनुमान लगाते हैं कि विषय-वस्तु की दृष्टि से मिलती होने के कारण यह बाणी एक ही समय और एक ही स्थान पर नहीं रची गई है।

***१६३, आदर्श नगर, ओल्ड कैंट रोड, फरीदकोट-१५१२०३ (पंजाब)। फोन : ९९१५७-०२८४३*

डॉ. सुरैण सिंघ मिलखु 'आदि ग्रंथ के परंपरागत तत्वों का अध्ययन' अपनी शोध पुस्तक में लिखते हैं कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब में वीर-काव्य की पद्धति पर वारों का भी निर्माण हुआ है। वारें स्पष्टतया लोक-काव्य की ध्वनि पर आधारित हैं। इसका प्रमाण श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अंत:साक्ष्य से ही मिल जाता है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब की नौ वारों को उस समय की प्रचलित लोक-वारों की पउड़ियों की धुनियों पर गाए जाने का संकेत है, यथा-- "वार माझ की सलोक महला १।" सलोक महला १ को तत्कालीन लोक-धुन 'मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ' पर गाए जाने का संकेत मिलता है :

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी ॥ *(पन्ना १३७)*

कहा जाता है कि अकबर के दरबार में दो राजपूत योद्धा-- मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा थे। दोनों में शत्रुता थी। एक बार अकबर ने मुरीद खां को सेना देकर काबुल पर आक्रमण करने हेतु भेजा। मलक मुरीद ने शत्रु को खदेड़कर काबुल पर कब्जा कर लिया, लेकिन शासन-व्यवस्था करने में कुछ दिन अधिक लग गए। चंद्रहड़ा ने अकबर के पास शिकायत की कि मलक मुरीद विद्रोही हो गया है। अकबर ने चंद्रहड़ा को मलक के विरुद्ध सेना देकर काबुल भेजा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए। ढाढी कवियों ने उनकी वीरता की वारें गाईं। यह वार बहुत प्रसिद्ध हो गई। इन वीरों की वार की गायन-शैली और प्रसिद्धि से प्रभावित होकर गुरु जी ने अपने शिष्य कवियों-ढाढियों को आदेश दिया कि श्री गुरु नानक देव जी द्वारा रचित 'वार माझ की' भी इसी लोक-धुन में गायन करें जिस शैली में मलक मुरीद और चंद्रहड़ा की वार गाई जाती है।

डॉ. रतन सिंघ (जग्गी) 'सिक्ख पंथ विश्व कोश, भाग-दो' में लिखते हैं-- "इसकी विषय-योजना, भाव-गहनता, चिंतन-शक्ति आदि तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह वार गुरु जी की प्रौढ़ अवस्था की रचना है। पउड़ियों के साथ सलोक जुड़ जाने से यह अपने मूल विधान से अलग हो गई लगती है। इस वार की पउड़ियों में श्री गुरु नानक देव जी के दार्शनिक और धार्मिक विचार प्रकट हुए हैं। दार्शनिकता के आधार पर परमात्मा, आत्मा, जगत और मुक्ति का वर्णन मिलता है तथा धार्मिक विचारों द्वारा गुरु, गुरु-शबद, नाम, साधना और भक्ति के महत्त्व की स्थापना की गई है।"

श्री गुरु नानक देव जी ने तीन वारों की रचना की है-- वार माझ, वार आसा और वार मलार। डॉ. धर्मपाल मैणी के अनुसार, 'वार' शब्द प्रशस्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'वार माझ की' के संदर्भ में डॉ. पदम गुरचरण सिंघ, 'युग-प्रवर्तक गुरु नानक और उनकी बाणी' में लिखते हैं कि "प्रस्तुत वार का प्रणयन श्री गुरु नानक देव जी द्वारा दक्षिण भारत के भ्रमण के समय हुआ था। इसमें गुरु जी के आध्यात्मिक और तत्कालीन परिवेश के सम्बंध में विचार मिलते हैं। इसमें हिंदुओं, मुसलमानों और जैनियों में प्रविष्ट कर चुकी बुराइयों का वर्णन करके अपने विचारों की स्थापना की गई है। तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण अवलोकनीय है। श्री गुरु नानक देव जी का उद्देश्य मात्र इतना था कि बाणी-रचना कर समाज को कुरीतियों से मुक्त कराना, तत्कालीन समाज को सही दिशा प्रदान करके मानवता का कल्याण करना। 'वार माझ की' भी उसी सद्साहित्य का एक रूप है। श्री गुरु नानक देव जी जिस युग में पैदा हुए उस युग में अंधविश्वास और कर्मकांड की प्रबलता थी। 'वार माझ की' की रचना करके श्री गुरु नानक देव जी ने उस समय की सामाजिक अवस्था के पतन का स्पष्ट चित्रण किया है। उनके

अनुसार सर्वत्र अराजकता थी; जात-पात, ऊंच-नीच, छुआ-छूत के कारण लोग एक दूसरे से घृणा करने लगे थे, राजनैतिक व्यवस्था चरमरा गई थी।"

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ ॥
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कहि चड़िआ ॥ (पन्ना १४५)

गुरु जी फरमान करते हैं कि राजा लोग कसाई बन गए थे। धर्म तो मानो कहीं पंख लगाकर उड़ गया था। सर्वत्र झूठ का साम्राज्य था। गुरु जी कहते हैं कि इस काली अमावस में सच का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं दे रहा, सारी प्रजा दुखी हो रही है।

'वार माझ की' में गुरु जी ने मानव जीवन के समस्त क्रिया-कलापों और अवस्थाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि समूचा जीवन एक धोखा है। मानव जीवन को उन्नति और अवनति के दोनों शिखरों को छूते हुए दिखाकर गुरु जी ने इस नश्वर जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत की है। जीवन में आने वाले सुख-दुख ईश्वरीय देन हैं। गुरु जी के अनुसार जो मनुष्य सदा सुख की कामना करता है और दुख से बचने की कोशिश करता है वह सदा दुखी रहता है। जो इसे ईश्वरीय देन समझता है वह कभी दुखी नहीं होता।

'वार माझ की' का विषय-वस्तु अत्यंत विस्तृत है। इसमें मानव जीवन के विभिन्न आयामों को चित्रित किया गया है। नाम-सिमरन को लेकर ईश्वरीय आस्था और अनास्था में संलिप्त सभी प्रकार के जीवों के कल्याण हेतु उत्तम मार्ग सुझाने वाली यह बाणी निश्चय ही अमरत्व की ओर ले जाने वाली है। श्री गुरु नानक देव जी ने अत्यंत सरल शब्दों में प्रभु के नाम का महत्त्व दर्शाया है। वे फरमान करते हैं :

इकि रतन पदारथ वणजदे इकि कचै दे वापारा ॥
सतिगुरि तुठै पाईअनि अंदरि रतन भंडारा ॥
(पन्ना १४१)

अर्थात् इस संसार में कुछ व्यापारी लोग (जीव) रत्नों (हीरे-जवाहरात आदि) का व्यापार करते हैं, कुछ लोग कांच आदि का व्यापार करते हैं। वास्तव में तो रत्न (पदार्थ) मनुष्य के अंदर ही (गुणों की खान) हैं। गुरु की शरण में गए बिना ये रत्न प्राप्त नहीं होते। प्रभु के नाम रूपी ये रत्न गुरु के प्रसन्न होने पर ही प्राप्त होते हैं। हमें गुरु की शरण में जाकर गुरु को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिए। अपने गुरु के प्रति अनन्य आस्था रखने वाले मनुष्य को ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। उन्होंने गुरु को प्रसन्न करने वाले को 'गुरमुख' कहा है और गुरु से विमुख होने वाले को 'मनमुख' कहा है। उनके अनुसार मनमुख जीव केवल असत्य और अंधकार ही कमाता है :

सतिगुरु सेवि निसंगु भरमु चुकाईऐ ॥
सतिगुरु आखै कार सु कार कमाईऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु त नामु धिआईऐ ॥
लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाईऐ ॥
मनमुखि कूड़ु गुबारु कूड़ु कमाईऐ ॥
सचे दै दरि जाइ सचु चवांईऐ ॥
सचै अंदरि महलि सचि बुलाईऐ ॥
नानक सचु सदा सचिआरु सचि समाईऐ ॥
(पन्ना १४५)

अर्थात् यदि सतिगुरु की कृपा हो तो जीव ईश्वर के नाम का स्मरण कर सकता है। गुरु की कृपा होने पर ही भक्ति का श्रेष्ठ लाभ प्राप्त होता है। अगर गुरु-चरणों में लगकर सच्चे मन से ईश्वर का स्मरण किया जाए तो ईश्वर के सत्य के महल में स्थान मिलता है। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं कि जिसके पास सत्य है वह सत्य का व्यापारी है और वह सदा सत्य में ही समाहित रहता है।

श्री गुरु नानक देव जी ने गुरु में श्रद्धा

रखने वाले को ही श्रेष्ठ जीव माना है। यहां तक कि वह मृत्यु से भी भयभीत नहीं होता। ऐसा जीव सभी प्रकार के वैभव प्राप्त कर लेता है। वह सभी प्रकार के भंडारों के स्वामी से जुड़ जाता है :

सतिगुरु होइ दइआलु त सरधा पूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु न कबहूं झूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता दुखु न जाणीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता हरि रंगु माणीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता जम का डरु केहा ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता सद ही सुखु देहा ॥
(पन्ना १४९)

सतिगुरु की कृपा हो जाने से जीव को सदा सुख प्राप्त होता है। उसे ईश्वर पर पूरा विश्वास हो जाता है। वह ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करता है। वह दुख में दुखी नहीं होता, अपितु ईश्वर की रज़ा मान कर हर अवस्था में खुश रहता है। यहां तक कि गुरु जी जन्म और मृत्यु को भी ईश्वर की रज़ा मान कर ही उसे स्वीकार करने की बात कहते हैं। उनका कथन है कि ईश्वर ही इस संसार को बनाने वाला है और वो ही इसको चलाने वाला है। माया-मोह के कारण ईश्वर से विमुख जीव भटक गया है। तृष्णाओं के कारण मनुष्य ईश्वर से दूर चला गया है। जीव जीवन की लालसा में मृत्यु से भयभीत हो रहा है, आजीवन जन्म और मृत्यु के बीच भटक रहा है, लेकिन वो यह नहीं जानता कि गुरु की कृपा के बिना मोह-माया का बंधन टूट नहीं सकता। गुरु जी के अनुसार :

तुधु आपे जगतु उपाइ कै तुधु आपे धंधै लाइआ ॥
मोह ठगउली पाइ कै तुधु आपहु जगतु खुआइआ ॥
(पन्ना १३८)

गुरु जी ने आडंबरों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए तत्कालीन धर्मों, संप्रदायों एवं विभिन्न समुदायों में प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए नैतिक मान्यताओं को स्थापित करने पर भी बल दिया। उन्होंने दूसरों के लिए 'जीओ और जीने दो' का मार्ग प्रशस्त खिया। उन्होंने दूसरों का अधिकार छीनने वालों को कड़ी फटकार लगाई है। उन्होंने झूठ और फरेब को ईश्वर-प्राप्ति में बाधक माना है। सत्य का मार्ग त्याग कर स्वर्ग की कामना नहीं की जा सकती। उन्होंने हिंदुओं, मुसलमानों, बौद्धों, जैनियों, समस्त धर्मावलंबियों को ऐसी बातों से बचने का संदेश दिया, जिससे दूसरे का हक छिनता है। उन्होंने अपने धर्म-विधान में दूसरों का हक छीनने वालों को बुलंद आवाज में कहा कि मुसलमानों के लिए पराया हक छीनना सूअर का मास खाने और हिंदुओं के लिए गाय का मास खाने के तुल्य है। गुरु ईश्वर के दरबार में उसी जीव के लिए सिफारिश करेगा जो किसी का हक नहीं छीनता। पराया माल कभी हक नहीं बन सकता। दूसरे का हक छीनना हराम है। सत्य का सर्वत्र बोलबाला होता है। झूठ सदा झूठ ही रहता है, कभी सत्य नहीं बन सकता।

सिक्ख धर्म में गृहस्थी को सर्वश्रेष्ठ मनुष्य माना गया है। गृहस्थ जीवन का निर्वाह करता हुआ तथा पदार्थवाद का मोह त्याग कर जो जीव ईश्वर का स्मरण करता है वही सच्चा त्यागी है। कुछ लोग भगवे वस्त्र पहनकर वन में भटकते हैं, स्थान-स्थान पर भोजन की लालसा में घूमते हैं, मालाएं धारण करते हैं, योगी बनकर विभूत रमाते हैं, वे अपने जन्म को सार्थक नहीं कर पाते। इसके विपरीत जो मनुष्य गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए गुरु के उपदेश को अपने हृदय में धारण कर सच्चे मन से ईश्वर का स्मरण करते हैं वे ईश्वर के प्रिय भक्त बन जाते हैं और वे मृत्यु से भी भयभीत नहीं होते। ऐसा गृहस्थी, जो दूसरों से कपट करता है, झूठ बोलता है, दूसरों का हक मारता है, दूसरों को उपदेश देता है, के प्रति गुरु जी ने बहुत सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समझाने का प्रयास किया है कि अच्छा इंसान

बनने के लिए दूसरों के प्रति अपने मन में सद्भावना रखनी चाहिए :

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ॥
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ॥
(पन्ना १४०)

अर्थात् यदि कपड़े में रक्त लग जाए तो कपड़ा अपवित्र माना जाता है। जो लोग दूसरों का रक्त पीते हैं, कपट से उनका धन छीनते हैं, अन्याय करके उन्हें पीड़ित करते हैं, उनका हक छीनते हैं, उनका मन कैसे पवित्र रह सकता है? वे मलिन मन वाले लोग ईश्वर की भक्ति कैसे कर सकते हैं? उनकी भक्ति ईश्वर को स्वीकार्य नहीं। ईश्वर की दृष्टि में वे भी मलिन ही हैं।

'वार माझ की' में तत्कालीन समाज में व्याप्त जात-पात की कुरीति को समाप्त करने के लिए श्री गुरु नानक देव जी ने केवल ईश्वर के नाम-सिमरन का ही महत्त्व दर्शाया है। 'वार माझ की' में श्री गुरु नानक देव जी ने मनुष्य-जीवन को दस खंडों में विभक्त कर प्रत्येक खंड की कर्म-गति का चित्रण किया है, लेकिन इन दस अवस्थाओं में मनुष्य ईश-सिमरन के लिए समय नहीं निकाल पाता। गुरु जी कहते हैं कि गुरु के अभाव में संसार अंधेरे के गर्त में डूब गया है :

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि ॥
दूजै माइ बाप की सुधि ॥
तीजै भया भाभी बेब ॥
चउथै पिआरि उपंनी खेड ॥
पंजवै खाण पीअण की धातु ॥
छिवै कामु न पुछै जाति ॥
सतवै संजि कीआ घर वासु ॥
अठवै क्रोधु होआ तन नासु ॥
नावै धउले उभे साह ॥
दसवै दधा होआ सुआह ॥
गए सिगीत पुकारी धाह ॥
उडिआ हंसु दसाए राह ॥
आइआ गइआ मुइआ नाउ ॥
पिछै पतलि सदिहु काव ॥
नानक मनमुखि अंधु पिआरु ॥
बाझु गुरू डुबा संसारु ॥ (पन्ना १३७)

अर्थात् जीव प्रथम अवस्था में मां के दूध में ही उलझा रहता है, उसका ध्यान सदा दुग्ध-पान में ही लगा रहता है। दूसरी अवस्था में उसे माता-पिता की पहचान होती है। तीसरी अवस्था में परिवार के अन्य लोगों--भाई, बहन, भाभी आदि की पहचान हो जाती है। थोड़ा बड़ा होने पर चौथी अवस्था में उसकी खेलकूद में रुचि बढ़ने लगती है। पांचवीं अवस्था में उसकी खान-पान में रुचि बढ़ जाती है। छठी अवस्था में काम-भावना विकसित होती है। सातवीं अवस्था तक आते-आते संग्रह-भावना प्रबल हो जाती है और वह घर जोड़ने लगता है। फिर वो गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। आठवीं अवस्था में इच्छाओं की पूर्ति न होने पर उसमें क्रोध पैदा होता है। इससे उसका बल क्षीण होने लगता है। नौवीं अवस्था में उसके बाल सफेद हो जाते हैं और सांसें फूलने लगती हैं। दसवीं अवस्था में वह नश्वर शरीर को त्याग देता है और जलकर राख हो जाता है। संगी-साथी रोने लगते हैं, जीवात्मा शरीर से निकल कर अगला मार्ग पूछती है।

श्री गुरु नानक देव जी की बाणी अथाह समुद्र के समान गहन है। उनकी बाणी का प्रत्येक शब्द विस्तृत व्याख्या की मांग करता है। संगीतात्मकता उनकी बाणी का अनन्य गुण है। 'वार' साहित्य में 'वार माझ की', 'लोक-शैली' के अधिक निकट है। साहित्यिक दृष्टि से भी इस काव्य-शैली का विशिष्ट महत्त्व है। गुरबाणी ने लोक-गीतों के स्वाभावानुसार कुछ स्वच्छंदता ग्रहण की है, चाहे इसका कलेवर छंद-योजना का ही है। इसका साक्ष्य हमें कई स्थानों पर लोक-वारों से उद्धृत धुनों से मिलता है।

साधारणतया प्रत्येक वार के आरंभ में किसी लोक-वार की धुन पर गाए जाने का संकेत है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सभी वारों के साथ इन लोक-धुनों के संकेत उद्धृत हैं।

साहित्यिक दृष्टि से श्री गुरु नानक देव जी विरचित 'वार माझ की' मानव-कल्याण हेतु रचे गए सद्साहित्य की श्रेणी में आती है और इसका काव्य रूप व छंद-योजना विषयानुरूप है। श्री गुरु नानक देव जी ने मानव समाज की कुरीतियों का खंडन कर मानव-मूल्यों की स्थापना के लिए इसी विशेष काव्य-शैली को उपयुक्त समझा, क्योंकि गायन प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करता है। डॉ. रतन सिंघ (जग्गी) का इस विषय में कथन दृष्टव्य है। श्री गुरु नानक देव जी की प्रतीभा और पाखंड-खंडनात्मक, आलोचनात्मक शैली का परिचय उनके सलोकों से सहज ही मिल जाता है। इन सलोकों में उस समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों का सजीव और यथार्थ चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त गुरु जी का आध्यात्मिक ज्ञान और रहस्यवादी अनुभव भी परिलक्षित होते हैं। वार का विषय-वस्तु अत्यंत विस्तृत है। जंगलों में जाकर तप करना, कर्मकांड, कपट, धन-संग्रह, आडंबर, अन्याय, अत्याचार आदि से मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। गुरु जी के अनुसार मुक्ति और ईश-प्राप्ति के लिए सच्चे गुरु और सच्चे मन से नाम-सिमरन की आवश्यकता होती है। जाति से मुक्ति का कोई सम्बंध नहीं। यह अहं को बढ़ाती है। अच्छे कार्य ही मनुष्य को सच्ची शांति प्रदान करते हैं। यह सारा संसार माया का प्रपंच है। गुरु ही इस प्रपंच से बचा सकता है।

इस वार की सभी पउड़ियों में आठ-आठ पंक्तियां हैं। इन पउड़ियों में एकरूपता नहीं है। मात्राओं की असमानता के कारण सलोकों और पउड़ियों का स्वरूप भी भिन्न है। पहली, चौदहवीं और सोलहवीं पउड़ियों में मात्राओं की अधिक विषमता है। सलोकों का विभाजन भी समान नहीं है। दो से लेकर सात तक सलोक मिलते हैं। सलोकों के तुकांत भी संख्या में समान नहीं हैं। बीस से लेकर २४ मात्राओं तक के तुकांत मिलते हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से 'वार माझ की' पंजाबी भाषा के अधिक निकट है, विशेषत: सलोक। आडंबरों के खंडन के कारण इसकी खंडनात्मक पद्धति व्यंग्यार्थबोधक (व्यंजना शब्द शक्ति-युक्त) हो गई है। संस्कृत-अरबी-फारसी सहित पंजाबी शब्दों की बहुलता है। पउड़ी और सलोक छंद में मात्रात्मक विभिन्नता है।

मानव-कल्याण हेतु रचित 'वार माझ की' श्री गुरु नानक देव जी का जन-जागृति हेतु एक ऐसा सफल प्रयास है, जिसमें मानव को महामानव बनाने की जीवन-शैली को चित्रित किया गया है। इहलोक और परलोक को संवारने वाली यह बाणी मानव के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक पक्षों को सुदृढ़ करने में सक्षम है। अहं को समाप्त कर, तृष्णा को शांत कर, सच्चे गुरु का मार्ग अपनाकर नाम-सिमरन के लिए प्रेरित करने वाली 'वार माझ की' निस्संदेह श्री गुरु नानक देव जी की अतुलनीय और विलक्षण बाणी है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

१. गुरु ग्रंथ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, डॉ. मनमोहन सहगल
२. नानक बाणी, डॉ. जयराम मिश्र
३. आदि ग्रंथ के परंपरागत तत्त्वों का अध्ययन, डॉ. सुरैण सिंघ मिलखु
४. महान कोश (गुर शबद रतनाकर), भाई कान्ह सिंघ नाभा
५. सिक्ख पंथ विश्व कोश, भाग-२, डॉ. रतन सिंघ (जग्गी)
६. युग-प्रवर्त्तक गुरु नानक और उनकी बाणी (पंजाबी), डॉ. पदम गुरचरण सिंघ
७. श्री गुरु नानक देव जी, संपा. एम. जी. गुप्ता
८. नानक बाणी दा सच, डॉ. सरवण सिंघ परदेसी, प्रो. हरबंस सिंघ (चाहल)



शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष साहिबान : ३

स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया

*-स. रूप सिंघ**

सिक्ख पार्लियामेंट-- शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर के अध्यक्ष तथा श्री दरबार साहिब के प्रबंधक रह चुके स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया का विरसा-विरासत एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि महान सिक्ख योद्धा स. जस्सा सिंघ रामगढ़िया प्रवर्त्तक 'मिसल रामगढ़िया' से जुड़ती है। स. जस्सा सिंघ रामगढ़िया के चार भाइयों में से सबसे छोटे स. तारा सिंघ की अंश में से ही थे स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया। स. तारा सिंघ के पौत्र थे-- स. मंगल सिंघ तथा स. मंगल सिंघ के पौत्र थे-- स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया, जिनका जन्म मई, १८७९ ई. में स. शेर सिंघ के घर हुआ। रामगढ़िया मिसल का इतिहास बहुत गौरवमयी एवं शानो-शौकत वाला रहा है। सिक्खों की इस शक्तिशाली एवं हुनरमंद मिसल के पास दस हज़ार घुड़सवार फौज का प्रबंध था। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया के दादा स. मंगल सिंघ ने अप्रैल, १८३७ ई में जमरौद की जंग में बहादुरी से स. हरी सिंघ नलवे का साथ दिया, परंतु सिक्ख राज्य की समाप्ति पर स. मंगल सिंघ अंग्रेज सरकार के हमदर्द बन गये और प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों की तरफ से लड़े।

स. जोध सिंघ, प्रबंधक, श्री दरबार साहिब, श्री अमृतसर की सेवानिवृत्ति के बाद स. मंगल सिंघ को १८६२ ई में श्री दरबार साहिब का प्रबंधक लगाया गया। प्रबंधक पद पर वे निरंतर १७ वर्ष अपनी अंतिम सांसों, १८७९ ई तक रहे। इस समय के दौरान उनको अंग्रेज सरकार द्वारा ढेर सारा मान-सम्मान तथा पद दिये गये। स. मंगल सिंघ के छोटे पुत्र स. शेर सिंघ के दो पुत्र हुए-- स. संत सिंघ और स. सुंदर सिंघ। स. संत सिंघ ने स्नातक की डिग्री हासिल की, परंतु युवा अवस्था में ही १८९६ ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उन दिनों स. सुंदर सिंघ गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर में स्नातक की पढ़ाई कर रहे थे। इनको तथा इनके चचेरे भाई स. बिशन सिंघ को अंग्रेज हकूमत द्वारा ३६००/- रुपये की वार्षिक नकद जागीर तथा बहुत सारी ज़मीन-जायदाद मिली हुई थी। इनका परिवार उस समय बहुत पढ़ा-लिखा था। स. बिशन सिंघ शिमला कचहरी में इंस्पेक्टर थे, जो पंजाबी, अंग्रेजी, परशियन तथा उर्दू भाषाओं के ज्ञाता थे।

स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया बहुत चेतन और समर्पित सिक्ख थे। इन्होंने अपनी गौरवशाली विरासत को संभालने के लिए १९०२ ई. में 'रामगढ़िये सरदारों का विशलेषण' नामक पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी तथा प्रकाशित करवायी। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया के दो पुत्र थे-- स. महिंदर सिंघ तथा स. नरिंदर सिंघ। स. नरिंदर सिंघ दिल्ली में इनकम टैक्स अधिकारी था।

प्रो. प्रिथीपाल सिंघ कपूर रचित पुस्तक-- 'स. जस्सा सिंघ रामगढ़िया' में अंकित है कि स. सुंदर सिंघ का एक पुत्र स. नरिंदर सिंघ (इनकम टैक्स अधिकारी, दिल्ली) था, परंतु यादगार

**सचिव, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर-१४३००१; मो. ९८१४६-३७९७९*

स्थान रामगढ़िया की शिला, गुरुद्वारा बाबा दीप सिंघ जी जी शहीद (शहीदां), श्री अमृतसर से स्पष्ट होता है कि स. महिंदर सिंघ भी स. सुंदर सिंघ के पुत्र थे।

१८४९ ई में सिक्ख राज्य का सूर्य ढल जाने पर श्री दरबार साहिब तथा अन्य ऐतिहासिक गुरुद्वारा साहिबान का प्रबंध अंग्रेज सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। ५ सितंबर, १८५९ ई को श्री दरबार साहिब तथा शहर के अन्य गुरुद्वारा साहिबान के प्रबंध सम्बंधी विचार करने के लिए मिस्टर कपूर, ज़िलाधिकारी, श्री अमृतसर ने एकत्रता बुलाई। इस एकत्रता में १२-सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया। इस कमेटी के मुखिया स. मंगल सिंघ प्रबंधक थे, जो स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया के दादा जी थे। ज़िलाधिकारी के समक्ष इस कमेटी ने इकबाल किया कि सरकार की मदद के बिना हम श्री दरबार साहिब का प्रबंध नहीं चला सकते। अंग्रेज सरकार की जी-हजूरी तथा खुशामद की यह अति थी। आश्चर्य है कि जो सिक्ख विशाल पंजाब के राजा बनकर ५० वर्ष तक लाहौर के शाही किले पर केसरी परचम झुला सकते हैं वे इस काबिल भी न रहे कि श्री दरबार साहिब का प्रबंध स्वतंत्र रूप में चला सकें। खैर, ज़िलाधिकारी द्वारा बनाई कमेटी तथा स. मंगल सिंघ प्रबंधक ने श्री दरबार साहिब का प्रबंध चलाने के लिए कुछ नियम निश्चित किए। प्रबंधक का अर्थ है सरप्रस्त, इंतजाम करने वाला, रास्ता दिखाने वाला। वास्तव में यह शब्द तो बहुत ही प्यारा है, परंतु इस पदवी को अरूड़ सिंघ ने सबसे ज्यादा बदनाम किया। श्री दरबार साहिब, श्री अमृतसर तथा श्री दरबार साहिब, तरनतारन के प्रबंध में सबसे ज्यादा पतन अरूड़ सिंघ के समय आया। इन पावन स्थानों की पवित्रता, मर्यादा तथा सिक्खों के धार्मिक, सदाचारक, सामाजिक जीवन-मूल्यों से जो खिलवाड़ उस समय हुआ उसको बयान नहीं किया जा सकता और न ही बयान करना सार्थक है।

अरूड़ सिंघ को प्रबंधक पद से हटाने के लिए सिक्खों को लंबा संघर्ष करना पड़ा। प्रबंधक का मातमी जुलूस तथा पुतला फूंकने का प्रबंध किया गया। २६ मार्च, १९२० ई को अरूड़ सिंघ अपने खिलाफ हो रहे जुलूस में शामिल हुआ तथा उसने गले में पल्ला डालकर माफ़ी मांगी और प्रबंधक पद से त्याग-पत्र दे दिया। इस तरह सिक्ख जत्थेबंदक-शक्ति को उत्साह एवं बल प्राप्त हुआ। ज़िलाधिकारी, श्री अमृतसर ने अरूड़ सिंघ की जगह सम्माननीय सिक्ख परिवार से सम्बंधित स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया को श्री दरबार साहिब का प्रबंधक नियुक्त किया। श्री दरबार साहिब का प्रबंध सिक्खों द्वारा अपने अधिकार-क्षेत्र में लिए जाने के समय स. सुंदर सिंघ ही उसके प्रबंधक थे। श्री दरबार साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब पर पुजारियों द्वारा निभाई गई भूमिका की ख़बर जब प्रबंधक के पास पहुंची तो उन्होंने सम्बंधित पुजारियों को सिक्ख संगत से माफ़ी मांगने के लिए कहा, किंतु पुजारी अहंकार में थे। उन्होंने माफी मांगने से भी इंकार कर दिया। प्रबंधक की भी उन्होंने कोई परवाह न की। १३ अक्तूबर, १९२० ई को ज़िलाधिकारी, श्री अमृतसर ने नये पैदा हुए हालात पर विचार करने के लिए प्रबंधक, पुजारियों तथा मुखी सिक्खों को अपनी कोठी में बुलाया, किंतु पुजारी वहां भी न पहुंचे। ज़िलाधिकारी ने प्रबंध करने के लिए ९-सदस्यीय कमेटी बनाई जिसके मुखिया स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया थे। श्री दरबार साहिब के तोशेखाने की चाबियां प्रबंधक के पास होती थीं। अरूड़ सिंघ को

सिक्ख-शक्ति के आगे झुकते हुए जब प्रबंधक-पद से हाथ धोने पड़े तो उसने नव-नियुक्त प्रबंधक स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया को तोशेखाने की चाबियां तो दे दीं किंतु तोशेखाने में रखी वस्तुओं का बकायदा हिसाब न दिया। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया ने तोशेखाने के सारे सामान की सूची बनाई तथा प्रत्येक चीज़ को रिकार्ड में दर्ज किया।

१५ नवंबर, १९२० ई को १७५ सदस्यों पर आधारित शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी बनाई गई। सरकार द्वारा नामज़द ३६-सदस्यीय कमेटी भी इसमें शामिल थी। इस कमेटी के स्थायी चुनाव होने तक स. हरबंस सिंघ अटारी, प्रधान तथा स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया, प्रबंधक श्री दरबार साहिब, श्री अमृतसर की हैसियत से काम चलायें। इससे स्पष्ट है कि प्रबंधक स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया का चरित्र तथा व्यवहार सिक्खी-सिद्धांतों एवं रीति-रिवाजों के अनुसार ही होगा, नहीं तो इनको भी पुजारियों के साथ ही चलता कर दिया जाता। १७ दिसंबर, १९२० ई को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ-- जिसमें स. सुंदर सिंघ मजीठिया अध्यक्ष, स. हरबंस सिंघ अटारी उपाध्यक्ष तथा स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया सचिव चुने गये। फरवरी, १९२१ ई में श्री ननकाणा साहिब का दुखदायक साका घटित हो गया। २१ फरवरी, १९२१ ई को सुबह के समय ही स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया तथा स. हरबंस सिंघ अटारी डॉक्टरों की टीम लेकर वहां हाज़िर हुए थे।

जुलाई, १९२१ ई में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी का बकायदा चुनाव हुआ तथा १४ अगस्त, १९२१ ई को पदाधिकारी चुने गये। इस चुनाव के समय बाबा खड़क सिंघ अध्यक्ष, स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया उपाध्यक्ष तथा स. महिताब सिंघ महासचिव चुने गये। रामगढ़िया सरदारों के लिए यह एक बहुत बड़ी प्राप्ति थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा श्री दरबार साहिब के प्रबंध के लिए चार-सदस्यीय कमेटी बनाई गई, जिसमें स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया भी मुखी के रूप में शामिल थे। सितंबर, १९२१ ई में श्री दरबार साहिब, श्री अमृतसर तथा स्थानीय गुरुद्वारों का प्रबंध करने के लिए स्थानीय ९-सदस्यीय कमेटी बनाई गई, जिसके अध्यक्ष भी स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया थे।

श्री दरबार साहिब, श्री अमृतसर का प्रबंध गुरु-मर्यादा के अनुसार ठीक चल रहा था। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया चाहे सरकार द्वारा नियुक्त प्रबंधक थे परंतु वे हमेशा सिक्खी-सिद्धांतों एवं मर्यादा को समर्पित रहे। नव-निर्वाचित शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी में उनको सम्मानजनक पद प्राप्त हुआ और वे अपनी-अपनी ड्यूटी तन-मन से गुरु-ग्रंथ तथा गुरु-पंथ को समर्पित होकर कर रहे थे। २० अप्रैल, १९२१ ई को सरकार ने एलान कर दिया कि सिक्ख गुरुद्वारों का प्रबंध शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के हवाले कर दिया गया है। तोशेखाने की चाबियां स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया के पास ही थीं, जो उस समय उपाध्यक्ष और प्रबंधक भी थे। सरदार साहिब शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के पदाधिकारी तथा सहयोगी थे, इसलिए तोशेखाने की चाबियां उनसे लेने की जरूरत ही नहीं समझी गई। कुछ समय बाद शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के कुछ सदस्यों ने मांग की कि तोशेखाने की चाबियां अध्यक्ष, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर के पास होनी चाहिए। इस सम्बंध में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने २९ अक्तूबर, १९२१ ई को प्रस्ताव पारित कर दिया। यह ख़बर ज़िलाधिकारी,

श्री अमृतसर के पास भी पहुंच गई। ७ नवंबर, १९२१ ई को लाला अमरनाथ, अपर ज़िलाधिकारी पुलिस गार्द समेत स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया के मकान पर गया तथा तोशेखाने की चाबियों की मांग की। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया ने चाबियों की वसूली प्राप्त करके चाबियां दे दीं तथा साथ ही शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी को सूचित कर दिया। ज़िलाधिकारी, श्री अमृतसर ने बयान दिया कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी सिक्खों की प्रतिनिधि जमात नहीं। सरकार को खदशा था कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी श्री दरबार साहिब के प्रबंधक से चाबियां छीन लेगी, इसलिए सरकार को मज़बूर होकर प्रबंधक से चाबियां लेनी पड़ीं।

अंग्रेज सरकार ने स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया की जगह अपने वफ़ादार कैप्टन बहादर सिंघ को प्रबंधक नियुक्त कर दिया। स. सुंदर सिंघ का कसूर सिर्फ यही था कि वह पंथ का वफ़ादार होकर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के साथ चलता था। सरकार को सरकार-भक्त प्रबंधक की जरूरत थी, जो पूरी हो गई। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने १२ नवंबर, १९२१ ई. को फैसला किया कि नये प्रबंधक को श्री दरबार साहिब के प्रबंध में दख़ल नहीं देने दिया जायेगा। नये प्रबंधक को श्री दरबार साहिब के तोशेखाने का चार्ज भी न दिया गया। नया प्रबंधक सिक्ख जत्थेबंधक शक्ति का तेज झेल न सका, जिसके कारण वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से सख़्त बीमार हो गया। आखिर, बेचारे को अस्तीफा देना पड़ा।

२१ नवंबर, १९२१ ई को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने चाबियों का मोर्चा लगा दिया जो २७ जनवरी, १९२२ ई को सफल व संपूर्ण हुआ, जब ज़िलाधिकारी, श्री अमृतसर ने शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष को खुद चाबियां भेंट कीं। उस समय स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया तथा अन्य गण्यमान्य सिक्ख हाज़िर थे।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के मौजूदा रिकार्ड तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर के एकत्रताघर में लगी अध्यक्ष-पद पर सुशोभित गुरसिक्खों की सूची में स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया का नाम तीसरे स्थान पर अंकित है। इस तरह १९ फरवरी, १९२२ ई से १६ जून, १९२३ ई तक वे शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष पद पर सुशोभित रहे।

इसके अलावा सरदार साहिब कुछ समय ज़िला श्री अमृतसर के अव्वल दर्जा आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी रहे। गुरुद्वारा प्रबंध सुधार लहर तथा अकाली लहर की प्रमुख शख़्सियत स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया ४७ वर्ष की आयु में ७ अप्रैल, १९२६ ई को दिल का दौरा पड़ जाने के कारण परलोक गमन कर गये।

स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया तथा उनके परिवार की एक ही यादगार शेष है, जिसकी इबारत इस तरह है : "यह सफेद ज़मीन रामगढ़िये, जिसका क्षेत्रफल १७८६-०८ वर्ग गज़ है, स. तरलोचन सिंघ सुपुत्र स. बिशन सिंघ रामगढ़िया, स. महिंदर सिंघ सुपुत्र स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया, सरदारनी मनमोहन कौर सुपुत्री स. नरिंदर सिंघ रामगढ़िया ने हिब्बा (दान) करके गुरुद्वारा बाबा दीप सिंघ जी शहीद की नयी इमारत बनाने के लिए उक्त ज़मीन गुरुद्वारा साहिब को सत्कार सहित अर्पण की।" इस ज़मीन में रामगढ़िये सरदारों की यादगारें थीं-- स. जोध सिंघ रामगढ़िया से लेकर स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया समेत कुल १३ यादगारें थीं। स. सुंदर सिंघ रामगढ़िया की यादगार के रूप में मात्र एक शिला ही शेष है।



ख़बरनामा

श्री ननकाणा साहिब को पावन शहर करार देना पाकिस्तान का प्रशंसनीय कदम

श्री अमृतसर : २७ अक्तूबर : श्री गुरु नानक देव जी के जन्म-स्थान श्री ननकाणा साहिब को पाकिस्तान सरकार द्वारा किए पावन शहर का दर्जा दिए जाने के एलान को प्रशंसनीय कदम बताते हुए जत्थेदार अवतार सिंघ, अध्यक्ष शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने कहा कि श्री ननकाणा साहिब को पावन शहर करार देने से पाकिस्तान सरकार का विश्व भर में बसते सिक्ख भाईचारे के समक्ष मान-सत्कार बढ़ेगा।

जत्थेदार अवतार सिंघ ने कहा कि श्री गुरु नानक देव जी ने अपने जीवन काल के दौरान विभिन्न देशों की यात्राएं कीं तथा वहमों-भ्रमों एवं कर्मकांडों में फंसी मानव जाति को बाणी द्वारा उपदेश देकर बाहर निकाला। उन्होंने कहा कि श्री ननकाणा साहिब को पावन शहर करार दिए जाने से जहां सिक्ख भाईचारे द्वारा इस फैसले को प्रशंसनीय कहा जा रहा है, वहीं ननकाणा साहिब के निवासियों के लिए भी यह गर्व वाली बात है।

जत्थेदार अवतार सिंघ ने लार्ड इंदरजीत सिंघ को 'पंजाब रतन' पुरस्कार मिलने पर मुबारकबाद दी

श्री अमृतसर : २९ अक्तूबर : जत्थेदार अवतार सिंघ, अध्यक्ष, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने वर्ल्ड आर्गेनाईजेशन द्वारा लार्ड इंदरजीत सिंघ को 'पंजाब रतन' पुरस्कार मिलने पर मुबारकबाद देते हुए कहा कि स. इंदरजीत सिंघ ने विदेश में रहते हुए भी गुरु साहिब द्वारा बख़्शे सिक्खी स्वरूप को संभाला हुआ है। स. इंदरजीत सिंघ को बरतानिया संसद के उच्च सदन (हाऊस ऑफ लार्ड्ज़) में पहले दसतारधारी सिक्ख होने का भी गौरव प्राप्त है। वे बरतानिया में सबसे ज्यादा जाने-पहचाने सिक्ख हैं। उन्होंने पंजाबी सभ्याचार, विरासत तथा धार्मिक कामों में उल्लेखनीय योगदान डाला है। लार्ड इंदरजीत सिंघ प्रसिद्ध साहित्यकार, प्रसिद्ध कालम नवीस हैं। समूची सिक्ख कौम को ऐसे सिक्खों पर गर्व है, जिन्होंने विदेशों में रहकर भी अपनी अलग पहचान बरकरार रखी है। उन्होंने कहा कि देश हो चाहे विदेश, पुरस्कार केवल उन लोगों के ही हिस्से आए हैं जिन्होंने देश-कौम के लिए कुछ उल्लेखनीय कार्य किए हों। जत्थेदार अवतार सिंघ ने कहा कि यह भी सौभाग्य ही होता है कि पुरस्कार मिलने से पंथक कार्यों के प्रति और भी जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

भाई लाल जी के देहांत पर जत्थेदार अवतार सिंघ ने गहरा शोक व्यक्त किया

श्री अमृतसर : ६ नवंबर : श्री गुरु नानक देव जी के साथी रहे भाई मरदाना जी की १७वीं पीढ़ी में से महान रबाबी-कीर्तनिए भाई लाल जी (पाकिस्तान) के देहांत पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष जत्थेदार अवतार सिंघ ने गहरे शोक का इज़हार किया है। उन्होंने भाई लाल जी के परिवार के साथ सहानुभूति का प्रकटावा भी किया है।

जत्थेदार अवतार सिंघ ने कहा कि भाई लाल जी ने लंबा समय गुरबाणी-कीर्तन की सेवा की है और भाई मरदाना जी के वंश में से होने के कारण भाई लाल जी का विश्व भर के सिक्ख भाईचारे में सम्मानजनक स्थान है। उन्होंने कहा कि भाई लाल जी ने विरासत में मिली गुरबाणी-कीर्तन की दात को आगे अपने बच्चों में भी बांटा है। उन्होंने कहा कि उनकी अकाल पुरख के चरणों में अरदास है कि वे विछुड़ी रूह को शांति प्रदान करें तथा भाई लाल जी के परिवार पर कृपा की नज़र बनाए रखें।

१९८४ की सिक्ख नसलकुशी के दौरान मारे गए सिक्खों की याद में श्री अखंड पाठ साहिब।

श्री अमृतसर : ३ नवंबर : नवंबर १९८४ में देश की राजधानी दिल्ली व कई अन्य शहरों में गुंडों द्वारा सिक्खों को निशाना बनाते हुए ज़िंदा सिक्खों के गलों में जलते हुए टायर डालकर बहुत बेदर्दी से कत्ल किया गया। मां-बहनों को बेइज्जत किया गया। हंसते-बसते सिक्ख परिवारों को उजाड़ दिया गया। आज तक इन दंगाकारियों को २८ वर्ष गुजर जाने पर भी सज़ा नहीं दी गई। इस घटना के प्रति देश तथा विदेश में बैठे सिक्खों के मनों में भारी रौष है। इन्साफ की किरण किसी तरफ से भी दीख नहीं पड़ती।

बे-कसूर मारे गए सिक्खों की आत्मिक शांति के लिए गुरुद्वारा झंडे-बुंगे सचखंड श्री हरिमंदर साहिब में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा श्री अखंड पाठ साहिब के भोग डाले गए और गुरु की इलाही बाणी का कीर्तन भी किया गया।

दंगों के दौरान बे-कसूर मारे गए सिक्खों के परिवारों के सदस्यों को ज्ञानी जगतार सिंघ ग्रंथी 'सचखंड श्री हरिमंदर साहिब' द्वारा गुरु-घर की बख्शिश सिरोपा बख्शिश किया गया।

प्रिंटर व पब्लिशर स. दलमेघ सिंघ ने गोल्डन आफसेट प्रेस, गुरुद्वारा रामसर साहिब, श्री अमृतसर से छपवा कर मालिक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिए कार्यालय, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर से प्रकाशित किया। प्रकाशित करने की तिथि : ०१-१२-२०१२